गायत्री की प्रचंड प्राण ऊर्जा

श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री उपासना से प्राणशक्ति का अभिवर्धन

मनुष्य एक प्राणी है । प्राणी उसे कहते हैं-जिसमें प्राण हो । प्राण निकल जाने पर शरीर निर्जीव होकर सड़ गल जाता है इसलिए मृत्यु होते ही उसे जलाने, गाढ़ने, बहाने आदि का प्रबन्ध करना पड़ता है । मनुष्येत्तर जीवों के मरते ही उनके शरीर को समाप्त करने के लिए श्रृंगाल, कुत्ते आदि पशु-गिद्ध, कौए, चील आदि पक्षी और चींटी, गिडार आदि कीड़े नष्ट करने के लिए जुट पड़ते हैं । प्राण निकलते ही प्राणी का भौतिक अस्तित्व समाप्त हो जाता है । मनुष्य अथवा अन्य जीव-जन्तुओं के जीवित रहने और विविध क्रिया-कलाप करते रहने का सारा श्रेय इस प्राणशक्ति को ही है । जिसमें यह तत्त्व जितना न्यूनाधिक होता है उसी अनुपात से उसकी सशक्तता, समर्थता, प्रतिभा एवं स्थिति में कमी-वेशी दिखाई पड़ती है । मनुष्य अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ एवं समर्थ इसलिए है कि उसमें प्राणतत्त्व का दूसरों की अपेक्षा बाहुल्य रहता है ।

सजीवता, प्रफुल्लता, स्फूर्ति, सक्रियता जैसी शारीरिक विशेषतायें तथा मनस्विता, तेजस्विता, प्रतिभा, चतुरता जैसी मानसिक विभूतियाँ और कुछ नहीं प्राण रूपी सूर्य की किरणें-प्राणरूपी समुद्र की लहरें हैं । इतना ही नहीं अध्यात्मिक स्तर पर पाई जाने वाली सहृदयता, करुणा, कर्त्तव्य निष्ठा, संयमशीलता, तितिक्षा, श्रद्धा, सद्‌भावना, समस्वरता जैसी महानताएँ भी प्राण शक्ति की ही उपलब्धियाँ हैं । प्राण एक विद्युत है, जो जिस क्षेत्र में भी, जिस स्तर पर संयुक्त होती है उसी में चमत्कार उत्पन्न कर देती है ।

प्राण शक्ति, जीवनी शक्ति का दूसरा नाम है । जो जितना सजीव है उसे उतना ही प्राणवान् कहेंगे । यह शक्ति शरीर में चमकती है तो व्यक्ति रूप-लावण्य युक्त, निरोग, दीर्घजीवी, परिपुष्ट एवं प्रफुल्ल दिखाई देता है । उसे परिश्रम से ग्लानि या थकान नहीं वरन् प्रसन्नता प्राप्त होती है । मन में प्राण का बाहुल्य हो तो मस्तिष्क की उर्वरता अत्यधिक बढ़ जाती है । स्मरण शक्ति, सूझ-बूझ, कुशाग्रता, बुद्धिमत्ता, तुलनात्मक निर्णय क्षमता, एकाग्रता जैसी विशेषतायें उत्पन्न हो जाती हैं । अध्यात्म क्षेत्र में इस महत्ता का संचार होने पर व्यक्ति में शौर्य, साहस, अभय एवं सन्मार्ग पर निरन्तर चलते रहने का पुरुषार्थ उत्पन्न हो जाता है ।

यह प्राण शक्ति ही प्राणी की विशेषता है, यही उसकी वास्तविक सम्पत्ति है । इसी के मूल्य पर भौतिक समृद्धियाँ एवं सफलतायें मिलती हैं । इसलिये यह कहना उचित ही है कि जिसके पास जितनी प्राण शक्ति है वह उतनी ही मात्रा में जीवन संग्राम में विजय वरण करता है, उतना ही यशस्वी बनता है । प्राण का उपार्जन ही समस्त सम्पत्तियों की अधिपति महा सम्पत्ति का उपार्जन करना है । यह महा सम्पत्ति-जिसके पास जितनी मात्रा में होती है वह उतना ही अपने अभीष्ट लक्ष्य में सफल होता चला जाता है । प्राणवान व्यक्ति भले ही डाकू, तस्कर, ठग, शासक, नेता, वैज्ञानिक, अध्येता, व्यापारी, कृषक, सैनिक, महात्मा आदि कोई भी क्यों न हो, अपने प्रयोजन में असाधारण सफलता प्राप्त करेगा । अपनी दिशा में उन्नति के शिखर पर अवस्थित दिखाई देगा । अस्तु इस प्राण की सभी को आवश्यकता रहती है । यह बात अलग है कि कौन उसके लिए प्रयत्न करता है और कौन हाथ पर हाथ रखे बैठा रहता है, किसे उसको प्राप्त करने का मार्ग विदित है और कौन उससे अपरिचित रह रहा है ।

गायत्री महामंत्र का प्रमुख उद्देश्य प्राण शक्ति को उपलब्ध करना ही है । उसकी उपासना यदि ठीक प्रकार से की जाय तो उपासक में प्राण शक्ति की अभिवृद्धि शीघ्र ही होने लगती है और वह उस अभिवर्धन के आधार पर कई तरह की सफलतायें प्राप्त करने लगता है । कहने वाले इसे गायत्री माता का अनुग्रह, आशीर्वाद कहते हैं पर वस्तुतः होता यह है कि उस उपासना से साधक में प्राण शक्ति विकसित होती चली जाती है । उससे उसके व्यक्तित्व में कई प्रकार से सुधार परिवर्तन होते हैं, कई तरह के आकर्षण बढ़ते हैं, फलस्वरूप कठिनाइयों के अवरोध कार्य में से हटते हैं और सफलताओं का पथ प्रशस्त होता है ।

यह आन्तरिक परिवर्तन बहुत ही सूक्ष्म होता है, इसलिए वह मोटे तौर पर दिखाई नहीं देता, पर थोड़ा गम्भीरता पूर्वक निरीक्षण करने से कितनी ही विशेषतायें गायत्री उपासना में संलग्न व्यक्ति में दीख पड़ती हैं । प्रगति का आधार मनुष्य का विकसित व्यक्तित्व ही है । देवता किसी की भौतिक सहायता नहीं करते, वे व्यक्ति के व्यक्तित्व में कुछ ऐसे सुधार कर देते हैं, जिससे वह सफलता पर सफलता प्राप्त करता हुआ, अभीष्ट प्रयोजन की

दिशा में तेजी से आगे बढ़ता चला जाता है । गायत्री की उपासना वस्तुतः प्राण-शक्ति की ही उपासना है । जिसे जितना प्राणबल उपलब्ध हो गया समझना चाहिए, उसकी उपासना उतने ही अंशों में सफल हो गई ।

गायत्री का देवता सविता है । सविता का भौतिक स्वरूप रोशनी और गर्मी देने वाले अग्नि पिण्ड के रूप में परिलक्षित होता है पर उसकी सूक्ष्म सत्ता प्राण शक्ति से ओत-प्रोत है । वनस्पति, कृमि, कीट, पशु-पक्षी, जलचर, थलचर और नभचर वर्गों के समस्त प्राणी सविता देवता द्वारा निरन्तर प्रसारित प्राण-शक्ति के द्वारा ही जीवन धारण करते हैं । वैज्ञानिकों का निष्कर्ष है कि इस जगती पर जो भी जीवन के चिह्न हैं, वे सूक्ष्म विकिरण शीलता के ही प्रतिफल हैं । सावित्री उस प्राणवान सविता देवता की अधिष्ठात्री है । उसकी स्थिति को अनन्त प्राण-शक्ति के रूप में आँका जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी ।

यह विश्वव्यापी प्राणशक्ति जहाँ जितनी अधिक मात्रा में एकत्रित हो जाती है वहाँ उतनी ही सजीवता दिखाई देने लगती है । मनुष्य में इस प्राण तत्त्व का बाहुल्य ही उसे अन्य प्राणियों से अधिक विचारवान्, बुद्धिमान्, गुणवान्, सामर्थ्यवान् एवं सुसभ्य बना सका है । इस महान् शक्ति पुंज का प्रकृति प्रदत्त उपयोग करने तक ही सीमित रहा जाय तो केवल शरीर यात्रा ही संभव हो सकती है और अधिकांश नर पशुओं की तरह केवल सामान्य जीवन ही जिया जा सकता है, पर यदि और किसी प्रकार अधिक मात्रा में बढ़ाया जा सके तो गई गुजरी स्थिति से ऊँचे उठकर उन्नति के उच्चशिखर तक पहुँच सकना संभव हो सकता है ।

गायत्री महामन्त्र में वही प्रक्रिया या तत्त्वज्ञान सन्निहित है । जो विधिवत् उसका आश्रय ग्रहण करता है, उसे तत्काल अपनी समग्र जीवनी शक्ति का अभिवर्धन होता हुआ दृष्टिगोचर होता है । जितना ही प्रकाश बढ़ता है, उतना ही अन्धकार दूर होता है, इसी प्रकार आन्तरिक समर्थता बढ़ने के साथ-साथ जीवन को दुःख-दारिद्र का और घर व संसार को भवसागर के रूप में दिखाने वाले नाटकीय वातावरण से भी मुक्ति मिलती है ।

गायत्री मन्त्र का नामकरण उसकी इसी विशेषता के आधार पर हुआ है, गायत्री शब्द के तीन अक्षरों में यही भावार्थ ओत-प्रोत है ।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है-

सा हैषा गयांस्तत्रे प्राणाः व गयास्ततप्राणांस्तत्रे । तद्यद गायांस्तत्रे तस्याद् गायत्री नाम ।

-शतपथ १४ । ८ । १५ । ७

अर्थात् गय कहते हैं प्राण को । त्री अर्थात् त्राण, रक्षण करने वाली, जो प्राण की रक्षा करे उस शक्ति का नाम गायत्री हुआ ।

और भी देखिये-

गयाः प्रणा उच्यन्ते, गयान् प्राणान् त्रायते सा गायत्री ।

-सन्ध्या भाष्य

'गय' प्राण को कहते हैं, जो प्राणों की रक्षा करे उसे गायत्री कहते हैं ।

गायन्तं त्रायते इति वा गायत्री प्रोच्यते तस्मात् गायन्तं त्रायते यत ।

-याज्ञवल्क्य

प्राणों का संरक्षण करने वाली होने से उसे गायत्री कहा जाता है ।

गायतस्त्रायसे देवि तद्गायत्रीति गद्यसे ।
गयः प्राण इति प्रोक्तस्तत्त्राणादपीति वा ॥

-नारद

"जो गाने से त्राण (रक्षा) करे वह देवी गायत्री कही जाती है, अथवा जो गय अर्थात् प्राणों का त्राण करने वाली है वह गायत्री है ।"

गातारं त्रायते यस्माद् गायत्री तेन गीयते ।

-स्कन्द पुराण ९ । ५१

गायन करने वाले को त्राण उद्धार करती है, इसलिए उसे गायत्री कहते हैं ।

तेषाएते पञ्च ब्रह्मपुरुषा स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपालाः एतानेव पंचब्रह्म पुरुषान् स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपालान् वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्यते स्वर्गलोकम् ।

हृदय की चैतन्य ज्योति गायत्री-ब्रह्म रूप है । उस तक पहुँचने के लिए प्राण ध्यान, अपान, समान, उदान ये पाँच प्राण द्वारपाल हैं । इनको वश में करना चाहिए, जिससे कि हृदयस्थित गायत्री रूप ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव हो सके । इस क्रिया से उपासना करने वाले को स्वर्ग-सुख प्राप्त

होता है और उसकी कुल-परम्परा में वीर-जन उत्पन्न होते हैं ।

'गा' चेति सर्वगा शक्ति, 'यत्री' तत्र नियन्त्रिका ।

अर्थात् 'गा' शब्द यह सर्व गायत्री शक्ति का बोधक है । उस शक्ति को जो नियन्त्रित करने वाली सत्ता है उसे 'यत्री' कहना चाहिए । गायत्री अर्थात् सर्वव्यापी परा और अपरा प्रकृति पर नियन्त्रण करने वाली आत्म-चेतना ।

गायत्री मन्त्र के शब्दार्थ से प्रकट है कि यह मनुष्य में सन्निहित प्राण तत्व का अभिवर्धन, उन्नयन करने की विद्या है । 'गय' अर्थात् प्राण । त्री' अर्थात् त्राण करने वाली- प्राणों का परित्राण, उद्धार संरक्षण करे वह गायत्री । मन्त्र का अर्थ- मनन, विज्ञान, विद्या, विचार होता है । गायत्री मन्त्र अर्थात् प्राणों का परित्राण करने की विद्या ।

गायत्री मन्त्र का दूसरा नाम तारक मन्त्र भी है । साधना ग्रन्थों में उसका उल्लेख तारक मन्त्र के नाम से भी हुआ है । तारक अर्थात् पार कर देने वाला । गहरे जल प्रवाह को पार करके निकल जाने को, डूबते हुए को बचा लेने को तारना कहते हैं । यह भवसागर ऐसा ही है, जिसमें अधिकांश जीव डूबते हैं । तैरते तो कोई विरले हैं । जिस साधन से तरना सम्भव हो सके उसे 'तारक' कहा जायेगा । गायत्री में यह सामर्थ्य है इससे उसे तारक मन्त्र कहा है ।

प्राण-शक्ति की न्यूनता होने पर प्राणी समुचित पराक्रम कर सकने में असमर्थ रहता है । अधूरी मंजिल में ही निराश एवं असफल हो जाना पड़ता है । क्या भौतिक, क्या आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में अभीष्ट सफलता के लिए आवश्यक सामर्थ्य की जरूरत पड़ती है । इसके बिना आयोजन को पूर्ण कर सकना, लक्ष्य को प्राप्त कर सकना असम्भव है । इसलिए कोई महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए उसके लिए आवश्यक साधन जुटाना आवश्यक होता है । कहना न होगा कि भौतिक उपकरणों की अपेक्षा व्यक्तित्व की प्रखरता एवं ओजस्विता कहीं अधिक आवश्यक है ।

गायत्री का उपयोग करने के लिए भी शौर्य, साहस और सन्तुलन चाहिए । बढ़िया बन्दूक हाथ में है, पर मन में भीरुता, घबराहट भरी हो तो वह बेचारी बन्दूक क्या करेगी ? चलेगी ही नहीं, चल भी गई तो निशाना ठीक नहीं लगेगा । दुश्मन सहज ही उससे इस बन्दूक को छीन कर उल्टा

आक्रमण कर बैठेगा । इसके विपरीत साहसी लोग छत पर पड़ी ईंटों से और लाठियों से डाकुओं का मुकाबला कर लेते हैं । साहस वालों की ईश्वर सहायता करता है, यह उक्ति निरर्थक नहीं है, सच तो यही है कि समस्त सफलताओं के मूल में प्राण-शक्ति ही साहस, जीवट, दृढ़ता, लगन, तत्परता की प्रमुख भूमिका सम्पादन करती है और यह सभी विभूतियाँ प्राण-शक्ति की सहचरी हैं ।

प्राण ही वह तेज है जो दीपक के तेल की तरह मनुष्य के नेत्रों में वाणी में , गति-विधियों में, विचारों में प्रकाश बनकर चमकता है । मानव जीवन की वास्तविक शक्ति यही है । इस एक ही विशेषता के होने पर अन्यान्य अनुकूलताएँ तथा सुविधाएँ स्वयमेव उत्पन्न, एकत्रित एवं आकर्षित होती चली जाती हैं । जिसके पास विभूति नहीं उस दुर्बल व्यक्तित्व वाले की सम्पत्तियों को दूसरे बलवान लोग अपहरण कर ले जाते हैं । घेड़ा अनाड़ी सवार को पटक लेता है । कमजोर की सम्पदा, जर, जोरू, जमीन दूसरे के अधिकार में चली जाती है ।

जिसमें संरक्षण की सामर्थ्य नहीं वह उपार्जित सम्पदाओं को भी अपने पास बनाये नहीं रख सकता । विभूतियाँ दुर्बल के पास नहीं रहतीं इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए विचारशील लोगों को अपनी समर्थता, प्राण-शक्ति बनाये रखने तथा बढ़ाने के लिए भौतिक एवं आध्यात्मिक प्रयत्न करने पड़ते हैं । आध्यात्मिक प्रयत्नों में प्राण शक्ति के अभिवर्धन की सर्वोच्च प्रक्रिया गायत्री उपासना को माना गया है, उसका नामकरण इसी आधार पर हुआ है ।

शरीर में प्राण-शक्ति की निरोगता, दीर्घ जीवन, पुष्टि मेधा एवं लावण्य के रूप में चमकती है । मन में वही बुद्धिमत्ता प्रज्ञा के रूप में प्रतिष्ठित रहती है । शौर्य, साहस, निष्ठा, दृढ़ता, लगन, संयम, सहृदयता, सज्जनता, दूरदर्शिता एवं विवेकशीलता के रूप में उस प्राण शक्ति की स्थिति आँकी जाती है । व्यक्तित्व की समग्र तेजस्विता का अधार यह प्राण ही है । शास्त्रकारों ने इनकी महिमा को मुक्त कण्ठ से गाया है और जन साधारण को इस सृष्टि की सर्वोत्तम प्रखरता का परिचय कराते हुए बताया है कि वे भूले न रहें, इस शक्ति श्रोत के भाण्डागार को ध्यान में रखें और यदि जीवन लक्ष्य में सफलता प्राप्त करनी हो तो इस तत्त्व को उपार्जित,

विकसित करने का प्रयत्न करें ।

प्राणवान बनें और अपनी विभिन्न शक्तियों में प्रखरता उत्पन्न होने के कारण पग-पग पर अद्‌भुत सफलताएँ-सिद्धियाँ मिलने का चमत्कार देखें । प्राण की न्यूनता समस्त विपत्तियों का अभावों और शोक-संतापों का कारण है । दुर्बल पर हर दिशा से आक्रमण होता है, दैव भी दुर्बल का घातक होता है । भाग्य भी उसका साथ नहीं देता और मृत लाश पर जैसे चील, कौए दौड़ पड़ते हैं, वैसे ही हीन सत्व मनुष्य पर विपत्तियाँ टूट पड़ती हैं । इसलिए हर बुद्धिमान को प्राण का आश्रय लेना ही चाहिए ।

प्राणो वै बलम् । प्राणो वै अमृतम् । आयुर्नः प्राणः राज वै प्राणः ।

–बृहदारण्यक

प्राण ही बल है, प्राण ही अमृत है । प्राण ही आयु है । प्राण ही राजा है ।

यो वै प्राणः सा प्रज्ञा, या प्रज्ञा स प्राणः ।

–सांख्यायन

जो प्राण है, सो ही प्रज्ञा है , जो प्रज्ञा है, सो ही प्राण है ।

यावद्ध्यस्मिन् शरीरे प्राणोवसति तावदायुः ।

–कौषीतकि

जब तक शरीर में प्राण है तभी तक जीवन है ।

प्राणो वै सशर्मा सुप्रतिष्ठान् ।

–शतपथ

प्राण ही शरीर रूपी नौका की सुप्रतिष्ठा है ।

'हे प्राण ! यह विश्व और स्वर्ग में स्थिर जो कुछ है, वह आपके ही आश्रित है । अतः हे प्राण ! तू माता-पिता के समान हमारा रक्षक बन, हमें धन और बुद्धि दे ।'

सक्रामतं याँ जहीत शरीरः प्राणपानो ते सयजा विहस्ताम् । शतं जीव शरदो बर्धमानाऽग्निष्टे गोपा अधिपा वशिष्ठः ।

हे प्राण ! हे अपान ! इस देह को तुम मत छोड़ना । मिल-जुलकर इसी में रहना । तभी यह देह शतायु होगी ।'

व्यक्ति का व्यक्तित्व ही नहीं इस सृष्टि का कण-कण इस प्राण-शक्ति की ज्योति से ज्योतिर्मय हो रहा है । जहाँ जितना जीवन है, प्रकाश

है, उत्साह है, आनन्द है, सौन्दर्य है, वहाँ उतनी ही प्राण की मात्रा विद्यमान समझनी चाहिए। उत्पादन शक्ति और किसी में नहीं केवल प्राण में ही है। जो भी प्रादुर्भाव, सृजन, आविष्कार, निर्माण, विकास-क्रम चल रहा है, उसके मूल में यही परब्रह्म की परम चेतना काम करती है। जड़ पंचतत्वों के चैतन्य की तरह सक्रिय रहने का आधार यह प्राण ही है। परमाणु उसी से सामर्थ्य ग्रहण करते हैं और उसी की प्रेरणा से अपनी धुरी तथा कक्षा में हैं। विश्व ब्रह्माण्ड के समस्त ग्रह, नक्षत्रों की गति-विधयाँ इसी प्रेरणा-शक्ति से प्रेरित हैं। कहा भी है-

प्राणाद्धयेव खल्विमाहनि भूतानि जायन्ते। प्राणानि जातानि जीवन्ति। प्राणं प्रयस्त्यभि संविशन्तीति।

-तैत्तिरीय

प्राण-शक्ति से ही समस्त प्राणी पैदा होते और प्राण से ही जीते हैं और अन्ततः प्राण में ही प्रवेश कर जाते हैं।

सर्वाणि हवा इमानि भूतानि प्राणमेवा।
भिसंविशन्ति, प्राथमभ्युञ्जहते॥ -छान्दोग्य

यह सब प्राणी-प्राण में से ही उत्पन्न होते हैं और प्राण में ही लीन हो जाते हैं।

तेन संसारचक्रेऽस्मिन् भ्रमतीत्यैव सर्वदा।
तदर्थ ये प्रवर्तन्ते योगिनः प्राण धारणे॥
तत एवाखिलानाड़ी निरुद्ध मष्टवेष्टनम्।
इयं कुण्डलिनी शक्ति रन्ध्रं त्यजति नान्यथा॥-योगी गोरखनाथ

"प्राण वायु के कारण ही जीव समूह इस संसार-क्रम में भ्रमण करता है। योगी लोग दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिए इस वायु को स्थिर करते हैं। इसके अभ्यास से नाड़ियाँ पुनः कामादि अष्टदोष से दूषित नहीं हो पातीं। नाड़ी शुद्ध होने पर कुण्डलनी शक्ति अपने रन्ध्र को छोड़ देती है, अन्यथा नहीं छोड़ती।"

सोऽयमाकाश प्राणेन वृहव्याविष्ठच्चः तद्यथायमाकाशः प्राणेन वृहत्या विष्टव्ध एवं सर्वाणि भूतानि अपि पिपीलिकभ्यः प्राणिते वृहत्या विष्ठव्यानीत्वेवं विद्यात्। -ऐतरेय

"प्राण ही इस विश्व को धारण करने वाला है । प्राण की शक्ति से ही यह ब्रह्माण्ड अपने स्थान पर टिका हुआ है । चींटी से लेकर हाथी तक सब प्राणी इस प्राण के ही अश्रित हैं । यदि प्राण न होता तो जो कुछ हम देखते हैं, कुछ भी न दीखता ।

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
सं सध्रीची: स विषूचीर्बसान आवरीवर्ति भुवनेष्वन्त ॥

–ऋग. १-१६४-३१

"मैंने प्राणों को देखा है–साक्षात्कार किया है । यह प्राण सब इन्द्रियों का रक्षक है । यह कभी नष्ट होने वाला नहीं है । यह भिन्न-भिन्न भागों अर्थात् नाड़ियों से आता जाता है । मुख और नासिका द्वारा क्षण-क्षण में इस शरीर में आता है और फिर बाहर चला जाता है । यह प्राण शरीर में वायु रूप है, पर अधिदैवत रूप से यह सूर्य है ।"

गायत्री मन्त्र और प्राण विद्या

गायत्री मन्त्र के द्वारा जिस प्राणविद्या की साधना की जाती है, वह ब्रह्मविद्या ही है । जप, अनुष्ठन, और पुरश्चरणों के द्वारा मनोभूमि को शुद्ध किया जाता है, जिस प्रकार किसान अपनी कृषि भूमि को हल चलाकर जोतता है और उसे इस योग्य बनाता है कि बीज भली प्रकार उगे वैसे ही आत्म-कल्याण का पथिक भी अपनी मनोभूमि को माला रूपी हल के आधार पर कुसंस्कारों से परिमार्जित करके इस योग्य बनाता है कि उसमें उपासना के बीज भली प्रकार उग सकें । प्राण ही वह बीज है जो आगे चलकर साधक के सामने शक्ति एवं सिद्धि के रूप में प्रकट होता है, गायत्री उपासक के लिए जप की प्रथम कक्षा पूर्ण कर लेने के बाद दूसरी कक्षा प्राण-साधना की ही है । गायत्री शब्द का अर्थ ही 'प्राण' का उत्कर्ष करने वाली प्रक्रिया है ।

गायत्री उपासक जिस प्राणविद्या का साधन करता है, वह परब्रह्म सत्ता की प्रचण्ड आध्यात्मिक शक्ति है, इसे ब्रह्म ऊष्मा (लेटेन्ट हीट) भी कहते हैं । उपासना के द्वारा साधक अपनी अन्तरात्मा में इस शक्ति को जितनी अधिक मात्रा में अपने अन्दर धारण कर लेता है, उतना ही वह प्राणवान् आत्मबल सम्पन्न बनता जाता है ।

श्रुति में प्राण को प्रत्यक्ष ब्रह्म मानकर उसका अभिनन्दन किया गया है–

'वायो त्वं प्रत्यक्ष ब्रह्मासि ।' –ऋग्

–हे प्राण वायु ! आप प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं ।

"प्राणाय नमो यस्य सर्वमिद वशे: यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्व प्रतिष्ठितम् ।" –अथर्व० ११।४ ।१

उस प्राण को नमस्कार है जिसके वश में सब कुछ है, जो सबका स्वामी है, जिसमें सब समाये हुए हैं ।

उपनिषदों में भी ऐसे ही वर्णन मिलते हैं–

प्राणोभवेत् परब्रह्म, जगत्कारणमव्ययम् ।
प्राणोभवेत् तथा मन्त्र ज्ञानकोश गतोऽपि वा ॥

–ब्रह्मोपनिषद्

अर्थ–प्राण ही जगत् का कारण परब्रह्म है, मन्त्र ज्ञान, तथा पंचकोश प्राण पर आधारित हैं ।

'प्राणाग्रयः एवास्मिन् ब्रह्मपुरे जाग्रति ।' –प्रश्नोपनिषद्

–इस ब्रह्मपुरी में प्राण की अग्रियाँ ही सदा जलती रहती हैं । आरण्यक और ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राण को प्रज्ञा, आयु और अमृत कहा गया है । यथा–

'प्राणोस्मि प्रज्ञात्या तं मामायुरमृतमित्युपासस्त्वाऽयुः प्राणः प्राणो वा आयुः ।' यावदस्मिञ्छरीरे प्राणो वसति तावदायुः. । प्राणेनद्धि एवास्मिल्लोकेऽमृतत्वमाप्रोति । –शांखायन आरण्यक ५।२

–मैं ही प्राण प्रज्ञा हूँ, मुझे ही आयु और अमृत जानकर उपासना करो, जब तक प्राण है, तभी तक जीवन है, इस लोक में अमृतत्व प्राप्ति का आधार प्राण ही है ।

'अमृतम् वै प्राणः ।' शतपथ. ९।।।२।३१

–प्राण ही निश्चित रूप से अमृत है ।

सात प्राण ही सात ऋषि हैं । सप्त ऋषियों को ज्ञान, तप और अध्यात्म बल का प्रतीक माना जाता है । ये ऋषि सदा प्राणों के रूप में हमारे अन्दर मौजूद हैं, गायत्री उपासना के द्वारा इन्हें अपने अन्तस् में जागृत करके साधक ऋषितत्व के धारण का अधिकारी बनता है ।

ऐतरेय ब्राह्मण में आता है कि हिरण्यदन नामक ऋषि ने प्राण के

स्वरूप को जाना और उसकी उपासना के फलस्वरूप उन्हें विपुल परिणाम प्राप्त हुए ।

प्राण को ही ऋषि माना गया है । मंत्र दृष्टा ऋषियों का ऋषित्व उनके शरीर पर नहीं वरन् प्राण पर अवलम्बित है । इसलिये विभिन्न ऋषियों के नाम से उसका ही उल्लेख हुआ है । इन्द्रियों के नियन्त्रण को कहते हैं 'गृत्स' और कामदेव को कहते हैं 'मद' । यह दोनों ही कार्य प्राण शक्ति के द्वारा सम्पन्न होते हैं , इसलिए उसे 'गृत्समद' कहते हैं । 'विश्वं मित्रं यस्य असौ विश्वामित्र, प्राण का यह समस्त विश्व अवलम्बन होने से मित्र है इसलिए उसे विश्वामित्र कहा गया है ।

मननीय, भजनीय, सेवनीय और श्रेष्ठ होने के कारण उसे वामदेव कहा गया । सर्वम् पापमनोऽवायत् इति अत्रिः सबको पाप से बचाता है, इसलिए वही अत्रि है । इस बाज रूप शरीर का भरण करने से भरद्वाज भी वही है ।

विश्व में सबसे श्रेष्ठ विशिष्ट होने से वशिष्ट भी हुआ । इसी प्रकार प्राण के अनेक नाम ऋषि बोधक हैं ।

गायत्री के द्वारा जिस प्राण शक्ति की उपासना की जाती है, वह ही देवत्त्व का केन्द्र है, इसे उपलब्ध करके मनुष्य देवत्व का, देवसत्ता का प्रत्यक्ष दर्शन अपने भीतर करता है । शिर में सहस्र दल कमल के स्थान पर जो सहस्र देवताओं का कोश है, वह प्राण, मन और अन्न के द्वारा ही आवृत हो रहा है । अभक्ष्य अन्न का त्यागकर, मन का संयम करते हुए जो प्राण साधना की जाती है-उससे वे सहस्र दल वाले देवतत्व जागृत होते और साधक पर शान्ति का वरदान बरसाते हैं ।

शास्त्र ने कहा है-

'काया नगर मध्ये तु मारुतः क्षितिपालकः ।'

काया नगरी में प्राण वायु ही राजा है ।

"प्राणं देवा अनुप्राणन्ति । मनुष्याः पशवश्च मे । प्राणो हि भूतानामायुः । तस्मात्सर्वायुषमुच्यते । सर्वमेव त आयुर्यन्ति मे प्राणं ब्रह्मोपासते । प्राणो हि भूतानामायुः । तस्मात् सर्वायुषमुच्यते ।"

-तैत्तिरीय २।३

देवता, मनुष्य, पशु और समस्त प्राणी प्राण से ही अनुप्राणित हैं, प्राण ही

जीवन है इसीलिऐ उसे आयु कहते हैं, यह जानकर जो प्राण स्वरूप ब्रह्म की उपासना करता है, वह निश्चय ही सम्पूर्ण आयु को प्राप्त कर लेता है ।

'यावद्ध्यस्मिन् शरीरे प्राणोवसति तावदायुः ।'

–कौषीतकि उपनिषद्

'जब तक इस शरीर में प्राण है, तब तक जीवन है ।'

इस प्राण शक्ति का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण विज्ञान है । योग साधना से इस विज्ञान को प्रत्यक्ष किया जाता है । गायत्री की साधना से इस प्राण को ही जगाया जाता है । जिसने अपने सोते हुए प्राण को जगा लिया उसके लिए चारों ओर जागृति ही जागृति है । सब दिशाओं में प्रकाश ही प्रकाश है । सोता वही है, जिसमें प्राण सोता है, जिसकी प्राण शक्ति जग गई, इस संसार में उसे ही जागृत माना जाता है । उसी के सामने इस विश्व का वह रहस्य प्रकट होता है, जो सर्व साधारण के लिए छिपा हुआ ही है ।

"तदाहुः को स्वजुर्भहति यद्वावै प्राणो जागार तदेव जागरितम् इति ।'

–कौन सोता है ? कौन जागता है ? जिसका प्राण जागता है, वस्तुतः वही जागता है ।

'य एवं विद्वान्प्राणं वेद न हास्य प्रजा
हीयतेऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ।' –प्रश्नोपनिषद् ३।११

–जो विद्वान् इस प्राण के रहस्य को जानता है, उसकी सन्तति कभी नष्ट नहीं होती । वह अमर हो जाता है इस रहस्यमय प्राणविद्या को जानना प्रत्येक अध्यात्म प्रेमी का कर्त्तव्य है, क्योंकि इसीसे उसकी परम्परा अविच्छिन्न रहती है । सन्तति नष्ट नहीं होती है और उसी विद्या के कारण वह अमरपद को प्राप्त करता है ।

गायत्री मंत्र और उसके जप से इस प्रकार की एक थरथरी उत्पन्न होती है, जो शरीर के सूक्ष्म संस्थानों में व्याप्त ऊष्मा में इस तरह फूँक मारती है जैसे हवा से आग को प्रज्ज्वलित किया जाता है । दूध को एक विशेष गति से मंथन करने से उसमें से मक्खन बाहर निकल आता है । गायत्री मंत्र जप विश्व प्राण को आकर्षित करता है उसे उपासक के अन्तःकरण में प्रतिष्ठित करता है । प्रारम्भ में इसकी स्पष्ट अनुभूति नहीं होती किन्तु जैसे-जैसे ध्यान की एकाग्रता और जप में तल्लीनता बढ़ती जाती है प्राण-सत्ता

की स्पष्ट अनुभूति होने लगती है । इस प्राण अभिवर्धन की प्रतिक्रिया तुरन्त प्रारम्भ होती है जो उपासक के नेत्रों, वाणी, व्यवहार, विचारणा और स्वप्नों में स्पष्ट झलकने लगती है । अनेक बार पूर्वाभास, वाक् सिद्धि (शाप या वरदान) जैसी अलौकिक घटनायें भी घट जाती हैं, यह सब प्राण-तत्व के विकास की ही वैज्ञानिक प्रक्रिया है । गायत्री उपासना को सर्वाधिक महत्ता इसी वैज्ञानिकता के कारण ही दी गई । उसे भली भाँति समझा जा सके तो उपासना बहुत शीघ्रता से सफल होती है ।

प्राणशक्ति एक जीवंत ऊर्जा

प्रजापति ब्रह्मा के पास जाकर देवताओं ने प्रश्न किया-पितामह ! आप कहते हैं गायत्री उपासना करने वाले के सब सांसारिक कष्ट दूर हो जाते हैं तथा उसे परलोक में भी सुख-शान्ति और सद्गति की प्राप्ति होती है, पर आपने ऐसी महा सामर्थ्य वाली ईश्वरीय सत्ता से परिचय तो कराया ही नहीं, अब कृपया उसका विज्ञान समझाइये ताकि उस महाशक्ति से सम्पर्क का लाभ हम भी ले सकें ?

"गायत्री वरदां देवी-सावित्री वेदमातरम् ।"प्रजापति बोले-हे देवताओ ! यह जो अनेक प्रकार के वरदान देने वाली गायत्री है उसे तुम 'सावित्री" अर्थात् सूर्य से उद्भासित होने वाला ज्ञान जानो ।

"तेजो वै गायत्री" (गो. उ. ५।३), "ज्योतिर्वै गायत्री छन्दसाम्" (ताण्ड्य १३।७।२), "ज्योतिर्वै गायत्री" (कौश १७।६) "विद्युवती वै गायत्री" (ताण्ड्य १२।१।२), गायत्र्यैव भर्गः (गो. पू. ५।५), तेजसा वै गायत्री प्रथमं त्रिरात्रं-दाधार पदैर्द्वितीय यक्षैरस्तृतीयम् (ताण्ड्य १०।५।३)

अर्थात् गायत्री प्रकाश तेज, अग्नि और शक्ति रूप है तीनों काल गायत्री की शक्ति से ही गतिशील हैं ।

सूर्य-मण्डल से उद्भासित इस शक्ति को ही जड़-चेतन का आधार माना गया है-

सविता सर्व भूताना सर्वभावांश्च सूयते ।
सवनात्प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते ।।

समस्त तत्वों, सभी प्राणियों और समस्त भावनाओं को प्रेरणा देने के कारण ही उसे सविता कहते हैं ।

उपरोक्त वाक्यों में भारतीय तत्वदर्शियों ने सृष्टि विज्ञान की भौतिक और आध्यात्मिक प्रक्रिया का स्पष्ट ज्ञान करा दिया है । वह तत्व रूप होने से तत्वों या भौतिक पदार्थों की गति और सक्रियता का कारण है तथा भावना रूप, प्राण रूप होने से वही सम्पूर्ण प्राणियों एवं मनुष्यों को शक्ति, प्राण और प्रकाश देकर भावनात्मक विकास में सहायक होता है ।

विचारणाओं को उठाया नहीं गया, सोचने का लोगों ने प्रयत्न नहीं किया अन्यथा पता चलता कि ऋषियों, तत्वदर्शियों की उपरोक्त गवेषणायें पूर्ण वैज्ञानिक सत्य हैं । जो बातें आज से लाखों वर्ष पूर्व ऋषियों ने लिख दी थीं आज का विज्ञान ही उनकी सत्यता की साक्षी देने लगा है ।

यद्यपि वैज्ञानिक अभी बहुत थोड़ा और स्थूल भाग ही जान पाये हैं पर जो कुछ जाना जा सका है वह भी भारतीय मान्यताओं के प्रतिपादन की दृष्टि से कम नहीं ।

यों तो आकाश में असंख्य तारे हैं और वे सभी अपनी नाभिकीय शक्ति (न्यूक्लियर एनर्जी) का सृजन अपने आप करते हैं पर मूल रूप से वे सब सूर्य की ऊर्जा पर आधारित और जीवित हैं । सूर्य प्रति सेकण्ड चार सौ सैक्टीलियन ऊर्जा (गर्मी, प्रकाश और विद्युत के सम्मिश्रित स्वरूप का नाम ऊर्जा या एनर्जी है) फेंकता रहता है । उसके भीतरी भाग का ताप दो करोड़ डिग्री सेन्टीग्रेड से भी अधिक है । वहाँ इतनी तीव्र हलचल उठ रही है जैसी कि किसी नहर से एक नाली द्वारा जब पानी किसी दूसरी छोटी नहर में निकालते हैं तो उसके पृष्ठ और पीठ दोनों स्थानों में जल बड़ी तीव्र हलचल उत्पन्न करता है । अनुमान है कि सूर्य के मध्य भाग में इस हलचल का कारण "स्पाइरल" नामक आकाश-गंगा से आकर गिरता हुआ प्राण है जो कि ब्रह्माण्ड की किसी अज्ञात मशीन या किसी विराट् तारे से आता है । "सत् सवितु:" पद भी यही संकेत करता है कि सूर्य जो इस सविता लोक को प्रकाशित करता है । सूर्य के इस भाग में केवल नाभिक कण ही होते हैं इन पर किसी प्रकार का आवरण नहीं होता । न्यूट्रान इलेक्ट्रानों को भगाते रहते हैं और स्वयं प्रोटानों अथवा धन विद्युत आवेश में

बदलते रहते हैं । इसी से द्रव्य का रूपान्तर होता है अर्थात् हाइड्रोजन हीलियम में बदलता रहता है उससे उत्पन्न ऊर्जा ही सृष्टि का संचालन करती है । इस शक्ति का हजारवाँ भाग तो मनुष्य के उपयोग में आता है शेष ९९९ भाग से सविता देवता पृथ्वी की गतिविधियों, मौसम, नदियों, पहाड़ों, समुद्र और वर्षा आदि की गतिविधियों का नियन्त्रण करते रहते हैं ।

पृथ्वी में जो भी धूप, पत्थर का कोयला, लकड़ी का ईंधन, पानी, वायु, बिजली आदि हैं वह सब इसी ऊर्जा के रूपान्तर हैं जबकि पृथ्वी को सूर्य से कुल २०० ट्रिलियन किलोवाट की ही शक्ति प्राप्त होती है ("नीपर" के पानी का बिजली घर संसार का सबसे अधिक विद्युत उत्पादक माना जाता है, वह यदि दिन रात काम करे तो भी इतनी अधिक शक्ति नहीं दे सकता । यह सब देखकर मानना ही पड़ता है-"सविता वै प्रसवानामीशे" (यजुर्वेद) सबको उत्पन्न करने वाला परमेश्वर सविता ही है ।

यह शक्ति सूर्य लोक में जितनी प्रचण्ड है पदार्थों में भी वही प्रभाव लेकर समासीन हो गई । मन में भी वही शक्ति होने के कारण मनुष्य प्रत्येक पदार्थ के अन्तरंग से सम्पर्क स्थापित कर सकने और सूक्ष्म रूप से किसी भी पदार्थ की शक्ति को प्रवाहित कर लेने में समर्थ है, पर यह विज्ञान थोड़े से ही योगी जानते हैं । इसीलिए उनके कितने ही क्रिया-कलाप चमत्कार जैसे लगते हैं । अब जबकि पदार्थ में शक्ति की प्रचण्डता और अस्तित्व को विज्ञान ने भी स्वीकार कर लिया है, यह सिद्धियाँ यान्त्रिक रूप से ग्रहण की जा सकती हैं, पर उनके मनोगत चमत्कार तो योग और उपासना पद्धति से ही प्राप्त हो सकते हैं ।

विश्व ब्रह्माण्ड में इस अदृश्य शक्ति का प्रचण्ड सागर लहराता रहता है । इस तथ्य को भारतीय तत्वदर्शियों ने बहुत पहले जान लिया था-

तेजोयस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः ।

-देवी भागवत्

अर्थात्-'शक्ति व तेजरूप से प्रत्येक स्थूल पदार्थ में विद्यमान तुम अकूत बल वाली परमेश्वरी हमारी रक्षा और विकास करो ।' वास्तव में इसी शक्ति से मानसिक सम्बन्ध स्थापित करके वह ऋद्धि-सिद्धियाँ अर्जित की गयीं जो लोगों को चमत्कार जैसी लगती हैं । पर वे विज्ञान के

सिद्धान्तों पर ही पूर्णतया आधारित हैं । गायत्री उपासना के द्वारा इन अदृश्य शक्तियों का शरीर में आवाहन, धारण और विकास करना होता है । उससे स्वास्थ्य, आरोग्य, तेज, बल, बुद्धि का तो विकास होता ही है उन अतीन्द्रिय क्षमताओं का विकास भी होता है जिन्हें लोग आश्चर्य अथवा ईश्वरीय अनुकम्पा ही मानते हैं ।'

इन क्षमताओं का आधार प्राण शक्ति को कहा जा सकता है । मनुष्य शरीर में विद्युत-शक्ति का विपुल भण्डार भरा पड़ा है । मस्तिष्क से विचारों के कम्पन विद्युत प्रवाह के रूप में ही निकलते हैं । शरीर की आन्तरिक क्रिया-प्रक्रिया नाड़ी समूह के साथ-साथ प्रवाहित होते रहने वाले विद्युत प्रवाह के द्वारा ही सम्भव होती है । मस्तिष्कीय विद्युत में मन और बुद्धि के द्वारा देखे जाने वाले अनेकानेक चमत्कार आये दिन सामने आते हैं । साहस और उत्साह के रूप में, स्फूर्ति और उमंगों के रूप में इसी क्षमता के उभार उफनते दीख पड़ते हैं । विज्ञानवेत्ता 'प्राण' की व्याख्या इसी मानवी विद्युत के रूप में करते हैं ।

मानवी विद्युत 'प्राण'

मनुष्य में काम करने वाला यह विद्युत् प्रवाह भौतिक बिजली के समतुल्य नहीं है । बादलों में कड़कने वाली बिजली और धूप से अनुभव होने वाली गर्मी के समकक्ष उसे नहीं माना जा सकता । यह बिजलीघरों में उत्पन्न की जाने वाली शक्ति के समान भी नहीं है । भौतिक बिजली में धक्का मारने, आगे बढ़ाने एवं फैलाने की क्षमता है । उसकी गणना 'अश्व शक्ति' के रूप में की जाती है । किन्तु मानवी विद्युत की क्रिया पद्यति इससे भिन्न है उसमें व्यक्तित्व के बहुर्मुखी विकास की अनेकानेक सम्भावनाएँ जुड़ी हुई हैं । इतना ही नहीं वह अन्य प्राणियों को, पदार्थों को प्रभावित करती है और वातावरण पर अपना असाधारण प्रभाव छोड़ती है ।

अध्यात्म विवेचना में उसका वर्णन 'प्राण' के रूप में किया जाता है । ह्यूमन मैगनेटिज्म एवं मैटावोलिज्म उसे कहा जाता है । इसी को जीवनी शक्ति एवं मानवीय विद्युत कहा जाता है ।

"प्रोजेक्शन ऑफ एस्ट्रल बॉडी" ग्रन्थ में मानवी काया की अद्भुत संरचना और विचित्र कार्य पद्धति पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए कहा गया

है कि इतना अद्भुत होते हुए भी यह यंत्र अपना काम कर सकने में इस क्षमता के आधार पर ही समर्थ होता है जिसे मानवीय विद्युत् कहा जाना चाहिए । इसकी मात्रा एवं स्थिति यदि दुर्बल होगी, तो उसका प्रभाव शरीर संरचना सब प्रकार उपयुक्त होते हुए भी निराशाजनक ही देखा जा सकेगा । लेखक का कथन है कि सौर-मण्डलीय परिवार की तथा अन्यान्य ग्रह-नक्षत्रों की ज्ञात और अज्ञात किरणें धरती पर आती हैं । उनका प्रभाव पदार्थों पर तो पड़ता ही है, मानवी काया भी उस अनुदान में से अपना भाग ग्रहण करती है । सामान्यतया पदार्थों की तरह जीवधारियों को भी उस अभिवर्षण का लाभ अनायास ही मिलता रहता है किन्तु यदि संकल्प शक्ति की प्रखरता हो तो व्यक्तिगत चुम्बकत्व प्रचण्ड होता चला जायगा और उस आकर्षण से वह अन्तर्ग्रही सामर्थ्य प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होती चली जायगी ।

गामा, बीटा, एक्स, लेसर, अल्ट्रा वायलेट, अल्फा वायलेट आदि कितने ही स्तर की शक्ति किरणें भूमण्डल के भीतर और बाहर काम करती हैं । उन सबका समुचित समावेश मनुष्य के सूक्ष्म शरीर में हुआ है । स्थूल शरीर जड़ पदार्थों की बन्धन रज्जुओं से जकड़ा होने के कारण ससीम है । पर सूक्ष्म शरीर में सम्मिलित शक्तियों का कोई अन्त नहीं । उसका निर्माण ऐसी इकाइयों से हुआ है जिनकी हलचल ही इस वातावरण में विविध-विध क्रिया-कलाप उत्पन्न करती है । इस दृष्टि से मनुष्य बाहर से एक जीवधारी मात्र दीखते हुए भी वस्तुतः असीम सामर्थ्यों का पुञ्ज हैं। कठिनाई एक ही है कि वे सामान्यतया प्रसुप्त स्थिति में पड़ी रहती हैं जिन्हें अधिक मात्रा में आकर्षित करने और व्यावहारिक भूमिका का निर्वाह कर सकने योग्य बनाने में व्यक्तिगत रूप से प्रबल प्रयत्न करने पड़ते हैं ।

ब्रह्माण्ड-व्यापी महाशक्तियों में ग्रहों की गुरुत्वाकर्षण क्षमता सर्वविदित है । अकाश में अवस्थित सभी ग्रह-नक्षत्र इसी के आधार पर टिके हुए हैं और गतिशील है । यह गुरुत्वाकर्षण आखिर है क्या ? इसका सूक्ष्म अन्वेषण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि यह मूलतया इलेक्ट्रोमैगनेटर विद्युत चुम्बकीय सत्ता है । जो ग्रह-नक्षत्रों की भ्रमणशीलता और आकर्षण शक्ति के उभय-पक्षीय प्रयोजन पूरे करती है । प्रकाश, ताप,

ध्वनि, विद्युत् इसी के स्वरूप हैं । अणुओं की हलचलों से लेकर रासायनिक परिवर्तनों का सरजाम वही जुटाती है । ईथर के ब्रह्माण्ड-व्यापी महासागर पर इसी विद्युत चुम्बक का आधिपत्य छाया हुआ है । यह शक्ति जड़ नहीं है । यदि वह जड़ रही होती, तो अणु-परमाणुओं की संरचना और हलचलों में अद्भुत व्यवस्था दिखाई पड़ती और उसके दर्शन न होते ।

यही विद्युत चुम्बक 'प्राण' है । मनुष्य में वह तेजोबलय के रूप में काया के इर्द-गिर्द फैला हुआ देखा जा सकता है । शरीर में ऊर्जा के रूप में उसका अस्तित्व है । जीवाणुओं की, अवयवों की विभिन्न हलचलें इसी के सहारे संचारित होती हैं । मस्तिष्क की मशीन अपने आप में अद्भुत है, पर वह स्वसंचालित नहीं है । यदि उसकी अपनी सामर्थ्य रही होती तो फिर मृत शरीर का मस्तिष्क भी अपना काम करते रह सका होता। यह प्राण' ही है जो मस्तिष्क की चेतन और अचेतन परतों पर छाया हुआ है और उन्हें अपने निर्धारित क्रिया कलाप करते रहने के लिए आवश्यक सामर्थ्य प्रदान करता है ।

ग्रहों में अपना अपना गुरुत्वाकर्षण है। फिर भी वह उनका निजी उत्पादन नहीं है । ब्रह्माण्ड-व्यापी विद्युत चुम्बकीय क्षमता में से ही यह ग्रह-नक्षत्र अपना हिस्सा बाँटते हैं और गुरुत्वाकर्षण दूसरे शक्ति संचारों से भरे रहते हैं । यह सम्मिलत पूँजी है जिसमें से विश्व परिवार के सभी घटक अपना-अपना भाग पाते और गुजारा करते हैं । यही बात प्राण-शक्ति के सम्बन्ध में भी है । विश्व-व्यापी 'महाप्राण' एक तथ्य है । उसी विशाल वैभव में से पृथ्वी के जीवधारी अपनी-अपनी पात्रता और आवश्यकता के अनुरूप भाग पाते हैं । मनुष्य की यह विशेषता है कि वह इस सामान्य वितरण में से उपेक्षापूर्वक उसे गँवाता रह सकता है, जो उसके लिए सहज सुलभ है । इसी प्रकार उसके लिए यह भी सम्भव है कि प्रयत्न करे, उत्साह सँजोये और संकल्प के सहारे व्यापक प्राण-शक्ति में से बड़े से बड़ा भाग अपने लिए उपलब्ध कर सके । प्राण योग की साधना, प्राणायाम प्रक्रिया इसी प्रयोजन की पूर्ति का एक सुनिश्चित विज्ञान सम्मत आधार है ।

प्राण एक चेतन विद्युत ऊर्जा है जिसकी मात्रा बढ़ी-चढ़ी होने पर बहिरंग और अंतरंग जीवन के दोनों पक्षों में उसका चमत्कारी प्रभाव देखा जा सकता है । यह प्राण शक्ति ही व्यक्तिगत जीवन में साहस और उत्साह के रूप में चमकती है । उसे दृढ़ता और तत्परता के रूप में देखा जा सकता है । संकल्प शक्ति के रूप में उसीका परिचय प्राप्त किया जाता है । निश्चय को पूर्ण करने के लिए मनुष्य इसी क्षमता के सहारे अनेकानेक कठिनाइयों को चीरता, अवरोधों से जूझता, श्रम-साध्य और समय-साध्य मंजिल को पार करता है, प्रतिकूलताओं के बीच भी जो अनुकूलता उत्पन्न करने का प्रयास कर रहा है, निराशाजनक परिस्थितियों में जिस आशा की क्षीण किन्तु सुनिश्चित किरणें दीख पड़ती हों उसे प्राणवान कहा जा सकता है । लोक-प्रवाह के विपरीत जो अपनी राह एकाकी बना सके, अपने बलबूते पर अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने का शौर्य दिखा सके, उसमें आत्म-विश्वासी प्राण-शक्ति की उपयुक्त मात्रा काम करते हुए देखी जा सकती है ।

ऐतिहासिक महामानवों में इसी प्राण-तत्व की समुचित मात्रा रही है । इसी के सहारे उन्होंने महत्वपूर्ण निर्णय लिए और दुस्साहसपूर्ण कदम उठाये । लोक-प्रवाह के विपरीत जब उनने अपने स्वतन्त्र भाव निश्चय घोषित किये तो कुटुम्बी, सम्बन्धी और तथाकथित हितैषी एक जुट होकर उनका उपहास असहयोग और विरोध करने पर उतारू हो गये । उनने प्रवाह के विपरीत चलने में खतरे की आशंका देखी और शुभ-चिन्तक के नाते उस खतरे से बचने का परामर्श दिया, किन्तु प्राणवानों को तो आदर्शवादी मार्ग अपनाने में संकटों के साथ आँख-मिचौली खेलने में ही मजा आता रहा है । खतरों के बीच ही प्रगतिशीलता पनपती है ।

महामानवों की सफलताएँ उतनी महत्वपूर्ण नहीं जितनी कि उनके साहस प्रदर्शन की स्मृतियाँ । सफलताएँ तो कइयों को संयोगवश भी मिल जाती हैं उन्हें छल-बल से भी उपार्जित किया जा सकता है । महत्व उन घटनाओं का है जिनमें साहस के आधार पर घनघोर अँधेरे में प्रकाश जलाया गया और आँधी तूफान के बीच उस आलोक को बुझने से बचाया गया ।

लिंकोलन के राजा रिचार्ड ने तत्कालीन विशपह्यूगो को आदेश भेजा

कि वे अपनी सेवाएँ नारमण्डी युद्ध के लिए भेजें । विशप ने इस आज्ञा को मानने से इंकार कर दिया । स्पष्ट था कि ऐसी अवज्ञा क्रोधी रिचर्ड सहन न करेगा और विशप को पदच्युत करने से लेकर मौत तक का कोई दण्ड देगा । किन्तु बिशपह्यूगो इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए, वरन् वे सीधे दनदनाते हुए राजमहल में चले गये । राजा उस समय भोजन कर रहे थे, विशप को देखते ही वे आग-बबूला हो गये और उनकी ओर से मुँह फेर लिया ।

विशप ने कड़क कर कहा-"उठो विशप का अभिवादन करो ।" राजा चुप रहा । इस पर ह्यूगो ने राजा का कन्धा पकड़कर बुरी तरह झकझोर डाला और आज्ञा पालन का आदेश दिया ।

रिचार्ड सन्न रह गये । वे उठे और अभिवादन किया । भोजन के बाद परामर्श का क्रम चला और जैसा विशप चाहते थे वैसा ही समाधान बन गया । रिचार्ड ने अपने एक संस्मरण में स्वयं लिखा है-'विशप में कुछ विलक्षण शक्ति है । उनसे आँख मिलाते ही मनुष्य स्वमेव पराभूत हो जाता है ।

क्या भौतिक सफलताएँ पाने वाले, क्या आत्मिक प्रगति करने वाले सभी के व्यक्तित्व का तात्विक विश्लेषण करने पर उनकी विलक्षणता के पीछे प्राण प्रतिभा ही झाँकती पाई जायगी । नैपोलियन, सिकन्दर सरीखे पराक्रम और लिंकन, वाशिंगटन जैसे प्रगतिशील अपने संकल्पों को पूरा करने में प्राणपण से जुटे रहने के कारण ही कुछ कहने लायक प्रगति कर सके थे ।

आत्मिक क्षेत्र की समस्त सिद्धियों का श्रोत यही सत्साहस और प्रबल पुरुषार्थ है जिसे वैज्ञानिक शब्दों में प्राण-शक्ति का चमत्कार कह सकते हैं । आत्मसंयम नदी के प्रवाह को रोकने की तरह है, उसमें इन्द्रियों के उद्दण्ड घोड़ों की लगाम कस कर पकड़नी होती है । मन एक दुर्दान्त दैत्य है उसे वशवर्ती बना लेना, सरकस के हिंस्र पशुओं से विलक्षण खेल कराने वाले प्रशिक्षक द्वारा दिखाये जाने वाले दुस्साहस की तरह है । जबकि हर जगह सुविधाओं की पुकार है, तब तप-तितीक्षा का स्वेच्छा संकल्प कितना कठिन और कितना जटिल समझा जा सकता है । संग्रह और उपभोग के लिए सर्वत्र बिखरी आकुलता के बीच जो त्याग और

बलिदान की बात सोचते ही नहीं, उसे कर दिखाने के लिए भी कटिबद्ध हो जाते हैं, उन्हें प्राणवान ही कहा जा सकता है । उन्हें जो उपहार मिलते हैं, उन्हें उस साहसिकता का ही पुरस्कार कह सकते हैं, जिसकी व्याख्या प्राण-शक्ति के नाम से भी की जा सकती है ।

गायत्री मंत्र की उपासना से प्राण-शक्ति का अभिवर्धन आश्चर्य जनक गति से होता है । गायत्री मंत्र का देवता सविता है । यह सविता प्राण-शक्ति का अधिष्ठाता है । शास्त्रकार ने कहा है ।

आदित्य मंडले ध्यायेत्परमात्मानमव्ययम्

अर्थात्-सूर्यमंडल में अविनासी परमात्मा का ध्यान करना चाहिए । ध्यान से सूर्य के प्राण या शक्ति का आगमन होता है । स्मरणीय दिखाई देने वाला सूर्य तो सविता देवता का स्थूल प्रतीक है । सविता देवता का मूल स्वरूप तो उस स्थूल प्रतीक से अनंत गुना शक्तिशाली, समर्थ और प्राण स्रोत है ।

याभिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्ताभिः पर्जन्यो भवति ।

अर्थात्-सूर्यदेव जिन किरणों से तपते हैं उन्हीं किरणों की वृष्टि करते हैं ।

सूर्य और मन एक तत्व होने से इस ध्यान के फलस्वरूप मन में सूर्य की तेजस्विता का विकास होता है ।

मनौ वै सविता । प्राण धियः

-शतपथ ३ ।६ ।१ ।१३

मन ही सविता है, प्राण ही धी है । इन्द्रियों की स्थूल व पराशक्ति का विकास भी इसी शक्ति से होता है क्योंकि वे भी इसी से सम्बद्ध हैं-

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।

-मुण्डक २ ।१ ।३

मन और समस्त इन्द्रियाँ प्राण की ही उपज है ।

गोपथ ब्राह्मण पूर्व भाग में प्राण और विद्युत को सूर्य की ही देन कहा है -

प्राण एव सविता, विद्युदेव सविता । ७ ।७ ।९

यह प्राण और विद्युत सविता के दिये हुए हैं । इस प्रकार सविता देवता प्रस्फुटित यह चैतन्य तत्व गायत्री ही मनुष्य के विकास में समर्थ है

यदि हम उसे भली प्रकार समझकर धारण कर सकें तो यह शक्ति स्वरूपा गायत्री हमारे मन, बुद्धि, चित्त को शुद्ध और निर्मल बनाकर हमारी क्षमताओं का विस्तार सैकड़ों गुना कर सकती है और उसीसे हम लोक-परलोक की सुख-शान्ति के अधिकारी हो सकते हैं ।

प्राणयोग-प्रचण्ड ऊर्जा का उत्पादन

प्राण एक शक्ति है और शक्ति उत्पन्न करने का एक तरीका है-घर्षण भौतिक जगत् में इस प्रयोग से शक्तिशाली उपलब्धियाँ प्राप्त की जाती हैं । आत्मिक जगत् में प्राण-शक्ति का उपार्जन करने के लिए भी यही प्रक्रिया प्रयुक्त की जाती है ।

निर्जन सुनसान जंगलों में कई बार भयंकर आग लगती है और विस्तृत क्षेत्र के गीले-सूखे पेड़ों को जलाकर खाक कर देती है । यह मनुष्यों द्वारा उत्पन्न की गई या लगाई गई नहीं होती, क्योंकि जो क्षेत्र सर्वथा निर्जन है वहाँ वैसा होने की कोई सम्भावना नहीं होती । यह आग सूखे पेड़ों की टहनियाँ तेज हवा के कारण हिलने और आपस में टकराने के कारण उत्पन्न होती है । इस कार्य में बाँस सबसे अग्रणी है । झुरमुट में बाँस एक दूसरे से सटकर उगे होते हैं । तेज हवा से उनका टकराना स्वाभाविक है । सूखे बाँस आपस में रगड़ खाकर पहले गरम होते हैं । फिर चिनगारियाँ निकालने लगते हैं । यह आग बढ़ती और फैलती चली जाती है और दावानल का रूप धारण कर लेती है ।

चकमक पत्थर के टुकड़े आपस में टकराकर चिनगारियाँ उत्पादन करने की कला ही आदि मानव ने सीखी थी । पीछे लोहे और पत्थर को टकराकर भी आग निकालने की तरकीब निकाल ली गई । यज्ञ कार्यों में लकड़ियाँ रगड़ कर अरणि-मंथन की क्रिया द्वारा अग्नि उत्पन्न की जाती थी । धूनी जलाकर अखण्ड अग्नि को सुरक्षित रखने का प्रचलन तो पीछे हुआ, आरम्भ में रगड़ से ही अग्नि उत्पन्न की गई उस समय की साधनहीन परिस्थितियों में यह अग्नि आविष्कार आज के रेडियो विज्ञान से भी बढ़कर महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ था और उसने मानव प्रगति को सौ गुना बढ़ा दिया था ।

प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास की क्रिया को क्रमबद्ध, तालबद्ध, लयबद्ध बनाया जाता है और साँस लेने की साधारण सी अनवरत प्रक्रिया की

अव्यवस्था दूर करके उसे व्यवस्था के बन्धनों में बाँधा जाता है ।

सामान्यत: श्वाँस का आवागमन फेफड़ों तथा अन्य अवयवों में सिकुड़ने फैलने की हालत उत्पन्न करता है । उसी से दिल धड़कता है- रक्त संचार होता है, मांस-पेशियों का आकुंचन-प्रकुंचन क्रम चलता है । जिस प्रकार पेन्डुलम का हिलना घड़ी की गति-विधियों को स्वसंचालित रखने का आधार होता है उसी प्रकार श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया को एक प्रकार से शरीर की समस्त हलचलों का उद्‌गम केन्द्र कहा जा सकता है । कहावतों में अक्सर ऐसे प्रसंग आते हैं-' भगवान के यहाँ से जितने श्वाँस मिले हैं उतने दिन ही तो जीना है ।'' थोड़े से श्वाँस और शेष रहे हैं आदि ।' मृत्यु का मोटा ज्ञान श्वाँस चलना बन्द हो जाने से ही किया जाता है । नाड़ी की धड़कन बन्द होना श्वाँस बन्द होने का ही लक्षण है ।

श्वाँस को जीवन कहा जाता है । तनिक गहराई से विचार करें कि हवा तो जड़ पंच-तत्वों में गिनी जाती है उनकी प्रतिक्रिया हलचल भी हो सकती है । तेज हवा से पत्ते हिलते हैं, धूल कण, तिनके आदि उड़ते हैं, इससे जीवन तो उत्पन्न नहीं होता । हवा में जब स्वयं ही जीवन नहीं पाया जाता तो वह प्राणी को जीवन कहाँ से दे सकती है ? यदि साँस लेने से जीवन का सम्बन्ध नहीं है तो उसे प्राण के अर्थ में क्यों प्रयुक्त किया जाता है और प्राण को जीवन का पर्यायवाची क्यों माना जाता है ?

बात यह है कि हवा मोटे तौर से एक पदार्थ प्रतीत होती है पर उसकी भीतरी परतों में और भी महत्वपूर्ण वस्तुएँ विद्यमान हैं । दूध में घी तो दिखाई नहीं पड़ता पर वह उसमें रहता अवश्य है और अमुक विधि से उसे अलग निकाला भी जा सकता है । वनस्पतियाँ मोटे तौर पर हरियाली भी लगती हैं पर प्रयोगशाला में उनका विश्लेषण करने पर प्रोटीन, नमक, चूना, चिकनाई आदि कितने ही स्तर के पदार्थ ढूँढ़े और निकाले जाते हैं । शरीर मोटे तौर पर माँस चमड़े का दीखता है पर विश्लेषण से उसमें दोनों प्रकार के रासायनिक पदार्थ मिलते हैं । इसीप्रकार साँस में प्रवेश करने वाली हवा मात्र स्पर्श तन्मात्रा वाली प्रकृति की हलचल नहीं है उसके भीतर कितने ही महत्वपूर्ण तत्व भरे पड़े हैं-वे भौतिक भी हैं और चेतनात्मक भी । वायुभूत भौतिक पदार्थ आकाश की सुविस्तृत पोल में भरे

पड़े हैं, इसे विज्ञानवेत्ता भली प्रकार जानते हैं । विज्ञानियों का कथन है कि चेतना जड़ शरीर में रहने वाली चेतन आत्मा की तरह है । वायु रूपी शरीर के भीतर एक प्राण भी चेतन शक्ति की तरह भरा है । हवा से सूक्ष्म ईथर, ईथर से सूक्षम प्राण, प्राण से सूक्ष्म ब्रह्म, इस प्रकार की परतों की कल्पना की जा सकती है । ऐसे परतों की जो आपस में पूरी तरह गुथे और मिले हुए हैं । माँस में रक्त घुला रहता है, और वायु में प्राण । सामान्यतया वे एकत्रित हैं, पर विशेष प्रयत्न द्वारा उन्हें पृथक किया जा सकता है और जिस पदार्थ की आवश्यकता हो उसे हस्तगत किया जा सकता है । ठीक इसी प्रकार वायु तत्व में घुले हुए प्राण तत्व को अलग से खींचा जा सकता है और उसे अपने प्राण तत्व में सम्मिलित करके अधिक शक्तिशाली बनाया जा सकता है ।

सामान्यतया साँस लेने से फेफड़ों में हवा पहुँचने और उससे रक्त को ऑक्सीजन मिलने तथा भीतर उत्पन्न हुई कार्बनडाई-ऑक्साइड को बाहर निकालने भर का शरीर-यात्रा का आवश्यक प्रयोजन पूरा होता है । इस श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया को विशेष ढंग से, विशेष क्रम से किया जाने लगे तो उससे भिन्न प्रकार की मंथन क्रिया आरम्भ हो जाती है । मंथन द्वारा दूध से घी निकलता है । रति क्रिया से वीर्यपात का आधार भी मंथन ही होता है । अनेक वैज्ञानिक प्रयोजनों में यह मंथन क्रिया की जाती है और उससे अणुओं का विकेन्द्रीकरण होने से छोटे रूप से अणु विस्फोट जैसी स्थिति उत्पन्न होती है और अनौखी उपलब्धियाँ मिलती हैं । दवाओं की घुटाई, पिसाई, घिसाई में भी प्रकारान्तर से यह मंथन क्रिया ही सम्पन्न होती है और सामान्यसी जड़ी बूटियाँ चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत करती हैं ।

आदिम सभ्यता के विकास काल में चकमक पत्थर के टुकड़े को आपस में टकराकर आग उत्पन्न की जाती थी । पीछे लोहे, पत्थर के टकराव से भी चिनगारियाँ उत्पन्न की जाने लगीं । अरणि मंथन मे- लकड़ियाँ आपस में रगड़ कर यज्ञ के लिए अग्नि उत्पन्न करना उस कर्मकाण्ड का एक अंग रहा है । सूखे हुए बाँस अथवा अन्य कोई लकड़ियाँ तेज हवा के झोंकों से आपस में रगड़ने लगती हैं और उनसे उत्पन्न आग बढ़ते-बढ़ते दावानल बनकर बड़े-बड़े जंगलों को जलाकर

खाक कर देती है । सीसे की छड़ एवोनाइट से घिसने पर बिजली उत्पन्न होने की बात साइन्स के छात्रों के स्कूली प्रयोगशाला में प्रत्यक्ष दिखाई जाती है । यह सब घर्षण चमत्कार है । ऐसी ही ऊर्जा श्वाँस क्रिया को मंथन क्रम में चलाने पर उत्पन्न होती है और उससे शीरिक सक्रियता एवं मानसिक तीक्ष्णता को प्रखर बनाने में महत्वपूर्ण सहायता मिलती है ।

चलती रेल के पहियों में जब चिकनाई समाप्त हो जाती है अथवा अन्य किसी कारण से घिसाव बढ़ने लगता है तो वही उत्पन्न होने वाली गर्मी धुरे तक को गला देती है और दुर्घटना की स्थिति बन जाती है । आकाश में कभी-कभी प्रचण्ड प्रकाश रेखा बनाते हुए 'तारे टूटते' दिखाई पड़ते हैं । यह तारे नहीं उल्का पिण्ड होते हैं । अन्तरिक्ष में छितराये हुए धातु पाषाण जैसे छोटे-छोटे टुकड़े कभी-कभी पृथ्वी के वायु मण्डल में घुस पड़ते हैं और हवा से टकराने पर जल कर खाक हो जाते हैं, उसी जलने का तेज प्रकाश देख कर तारा टूटने का अनुमान लगाया जाता है । यह मात्र घर्षण क्रिया का चमत्कार है । प्राणायाम में इसी क्रिया को अपने ढंग से दुहराया जाता है और प्रकाश उत्पन्न करते देखा जा सकता है ।

दही मंथन में 'रई' को रस्सी के दो छोर पकड़कर उलटा-सीधा घुमाया जाता है । रई घूमती है और उससे दूध में घुला हुआ घी बाहर आ जाता है, बायें-दायें नासिका स्वरों से चलने वाले इडा, पिंगला विद्युत प्रवाहों का अमुक विधि से मंथन करने पर दूध विलोने जैसी हलचल उत्पन्न होती है, उससे काया चेतना में भरा हुआ ओजस उभर कर ऊपर आता है । इसको विधिवत् उत्पन्न और धारण किया जा सके तो साधक को मनस्वी, तेजस्वी और ओजस्वी बनने का अवसर मिलता है । इस उपलब्धि को जीवन साहस एवं प्रखरता के रूप में कार्यान्वित होते देखा जा सकता है ।

कई व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से समर्थ और मानसिक दृष्टि से सुयोग्य होते हैं, पर साहस का अभाव होने से वे कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठा पाते । शंका-कुशंकाओं से ग्रस्त रहने-आपत्तियों की असफलताओं की सम्भावना उन्हें पग-पग पर डराती रहती है । थोड़ी-सी कठिनाई आने पर डरे घबराये दिखाई पड़ते हैं । ऐसे व्यक्ति प्रगति के उपयुक्त अवसर सामने

होने पर भी उन्हें गँवाते और गई-गुजरी स्थिति में आजीवन पड़े रहते हैं। इसके विपरीत साहसी व्यक्ति स्वास्थ्य, शिक्षा, साधन एवं उपयुक्त अवसर न होने पर भी दुस्साहस भरे कदम उठाते और आश्चर्यचकित करने वाली सफलताएँ प्राप्त करते देखे जाते हैं। ऐसे ही दुस्साहसी व्यक्ति इतिहास के पृष्ठों पर अपना नाम अमर करते देखे जाते हैं। किसी भी क्षेत्र की महत्वपूर्ण सफलताएँ पाने के लिए ऐसी ही साहसिक मनोभूमि का होना आवश्यक है। इस आन्तरिक समर्थता को दूसरे शब्दों में 'प्राण' कहा जाता है। प्राणवान का अर्थ जीवित ही नहीं साहसी भी होता है। इस उपलब्धि को स्वास्थ्य और शिक्षा से भी बढ़कर माना जा सकता है। प्राणायाम के प्रयोग इस उपलब्धि से साधक को लाभान्वित करते हैं।

जीवन के हर क्षेत्र में पग-पग पर संघर्ष की आवश्यकता होती है। प्रस्तुत कठिनाइयों को चीरते हुए ही प्रगति सम्भव होती है। नाव पानी को चीरते हुए आगे बढ़ती है। मकान बनाने का कार्य नींव खोदने से आरम्भ होता है। खेत को बोने से पहले उसे जोतना पड़ता है। अनेक योनियों में भ्रमण करते हुए जीव जिन पशुप्रवृत्तियों का अभ्यस्त होता है, उन्हें घटाये-हटाये बिना मानवी गरिमा के अनुरूप गुण-कर्म स्वभाव उपार्जित नहीं किया जा सकता। आन्तरिक अवांछनीयताओं को हटाकर उस स्थान पर उत्कृष्टताओं की स्थापना करने के प्रयोग को साधना कहते हैं। यह साहसिकता के बिना किसी प्रकार सम्भव नहीं। बाहरी शत्रुओं से लड़ने के लिए जितना युद्ध-कौशल चाहिए उतना ही शौर्य-साहस अपने भीतर घुसे हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सर जैसे आत्म शत्रुओं से लड़ने और परास्त करने के लिए आवश्यक होता है। दुर्बल मनःस्थिति के लोग अपनी भीतरी कमजोरियों को जानते हैं, उन्हें हटाना चाहते हैं, पर साहस के अभाव से उनके साथ लड़ने का पराक्रम प्रदर्शित नहीं कर सकते। फलतः आत्म-सुधार एवं आत्म-निर्माण का प्रयोजन पूरा कर सकना उनसे बन ही नहीं पड़ता। अपने को असहाय अनुभव करते हैं और थककर प्रयत्न ही छोड़ बैठते हैं।

बाहरी युद्ध जीतने के भौतिक लाभ हैं किन्तु आन्तरिक युद्ध में जीतने से तो विभूतियों का इतना बड़ा भण्डार हाथ लगता है जिसे पाकर मनुष्य-

जीवन सच्चे अर्थों में सार्थक माना जा सकता है । साधना को संग्राम कहा गया है । 'साधना समर' शब्द का अध्यात्म विज्ञान में बार-बार उल्लेख होता है । देवासुर संग्राम के अनेकानेक प्रसंग पौराणिक उपाख्यानों में आते हैं, यह अलंकारिक रूप मनुष्य जीवन के अन्तरंग और बहिरंग क्षेत्रों में सदा होते रहने वाले संघर्षों का ही चित्रण है । दुर्गा सप्तशती और गीता की पृष्ठभूमि इसी संघर्ष के आधार पर खड़ी है । भगवती दुर्गा द्वारा असुरों का संहार और कृष्ण द्वारा अर्जुन के माध्यम से महाभारत का आयोजन प्रकारान्तर से इसी तथ्य की ओर इंगित करते हैं कि साधना समर के क्षेत्र में प्रवेश किये बिना उन अवरोधों से पीछा नहीं छुड़ाया जा सकता जो मनुष्य को दयनीय दुर्दशा में डाले रहने के लिए प्रधान रूप से उत्तरदायी है ।

आत्मबल का उपार्जन

भगवान के अवतार के दो प्रमुख प्रयोजन हैं- (१) अधर्म का उन्मूलन (२) धर्म का संस्थापन । अनाचार को निरस्त करके ही सदाचार की स्थापना हो सकती है । अस्तु सिक्के के दो भागों की तरह उन्हें परस्पर पूरक एवं अविच्छिन्न भी कह सकते हैं । उद्यान को विकसित करने वाला माली जहाँ खाद पानी लगाता है वहाँ निराई, गुड़ाई, छटाई, रखवाली जैसी कड़ाई भी बरतता है । आत्मोत्कर्ष के लिए जहाँ सत्प्रवृत्तियों का विकसित किया जाना, पुण्य प्रयोजनों को अपनाना अभीष्ट है, उतना ही दुष्प्रवृत्तियों को उखाड़ फेंकने के लिए तत्परता बरतना भी आवश्यक है । भगवान के अवतार इस दुहरी क्रिया को सम्पन्न करने के लिए ही होते रहे हैं । व्यक्तिगत जीवन में भी प्रगति पथ पर बढ़ने वालों को इसी मार्ग का अवलम्बन करना होता है । संक्षेप में इसे यों कह सकते हैं कि जिसके अन्तःकरण में भगवान की दिव्य ज्योति का अवतरण होगा, उसे अवांछनीयताओं के विरुद्ध लोहा लेने के लिए पराक्रम प्रदर्शित करना होगा और सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन में जुटना होगा, यह दोनों ही प्रयोजन जिस आन्तरिक साहस द्वारा सम्पन्न होते हैं, उसी को 'आत्मबल' कहा गया है । साधना का एक उद्देश्य आत्मबल का उपार्जन भी है । प्राणायाम द्वारा उत्पन्न हुई आन्तरिक ऊर्जा इस उत्पादन में विशेष रूप से सहायक होती

है । इन्द्रिय दमन, मनोनिग्रह, कुसंस्कारों का उन्मूलन, सत्प्रयोजन की दिशा में अनवरत प्रयाण, कठिनाइयों से संघर्ष, जन उपहास एवं विरोध का सहन जैसे महत्वपूर्ण कार्य बिना आन्तरिक साहस के अन्य किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकते ।

कुविचार मस्तिष्क पर छाये रहते हैं और शरीर को अकर्म करने की आदत पड़ी होती है, यदि पुराने अभ्यासों को काटा, उखाड़ा न जाय तो फिर उत्कर्ष के लिए आगे बढ़ चलना कैसे बन पड़ेगा । स्पष्ट है कि कुविचारों को सद्‌विचारों से ही निरस्त किया जा सकता है । काँटे से काँटा निकालने और विष से विष को मारने की उक्ति प्रसिद्ध है । मस्तिष्क में यदि कामुकता के विचार उठते रहते हैं, तो उनके काटने का एक ही उपाय है कि ब्रह्मचर्य के पवित्र दृष्टिकोण के समर्थक विचारों को मस्तिष्क में जमा किया जाय । इस मार्ग पर चलने वाले हनुमान, भीष्म, शंकराचार्य, दयानन्द आदि महामानवों के चरित्रों का चिन्तन किया जाय, उस पक्ष के समर्थन वाले तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरणों को पर्याप्त मात्रा में स्वाध्याय, मनन आदि की सहायता से संग्रह किया जाय । उन पर बार-बार गहराई से विचार किया जाय । कामुकता तथा शालीनता के दोंनों पक्षों को अपनी-अपनी बात के समर्थन का अवसर देकर यदि विवेक द्वारा निष्पक्ष न्यायाधीश की तरह फैसला करने का अवसर दिया जाय तो पुराने अवांछनीय चिन्तन अभ्यास को आसानी से काटा जा सकता है । शारीरिक दुष्प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में भी यही बात है । नशा, व्यसन, आलस्य जैसे दुर्गुणों से निपटना, कठोर संकल्प एवं दृढ़ निश्चय से ही सम्भव हो सकता है । व्यक्तित्व का काया कल्प कर सकने वाले व्यक्ति ही सच्चे अर्थों में शूरवीर कहे जाते हैं और उन्हीं को भौतिक जगत की प्रत्येक दिशा में बढ़ चलने का द्वार खुला मिलता है । इस जीवन-प्राण कहे जा सकने वाले चेतना-तत्व को प्राण कहते हैं । प्राणायाम इसी उपलब्धि की साधना है ।

आत्मबल इसी आन्तरिक ऊर्जा का नाम है जो मनुष्य की भौतिक और आत्मिक क्षेत्र में प्रबल पुरुषार्थ करने तथा आश्चर्य चकित करने वाली उपलब्धियाँ उपार्जित करने की आधारशिला सिद्ध होता है । इसी ऊर्जा को उपार्जित करना प्राणायाम करने का प्रधान उद्देश्य है । तालबद्ध, क्रमबद्ध,

संकल्पयुक्त विशेष श्वाँस क्रिया को प्राणायाम कहते हैं । किस स्तर का प्राण उपार्जित किया जाय इसके लिए भिन्न-भिन्न विधि-विधान है । सूर्य की सात किरणों की तरह एक ही प्राण शक्ति के भेद-उपभेद सन्निहित शक्ति के वर्गीकरण का ध्यान रखते हुए किये गये हैं । भस्त्रिका, भ्रामरी, उज्जायी, शीतला, सीत्कारी आदि अनेकों विधि-विधान हैं । इनके उद्देश्य और प्रतिफल भी अनेक हैं ।

गायत्री की दैनिक उपासना में प्राणायाम साधना को अनिवार्य कर्म में जोड़ा गया है पर उसका विधान मात्र पूरक, अन्तर्कुम्भक, रेचक और बाह्यकुम्भक तक ही सीमित है । सामान्य की अपेक्षा थोड़ा अधिक देर तक जब तक फेफड़े पूरी तरह वायु से न भर जायें साँस खींचना पूरक क्रिया कहलाती है । जितनी देर सम्भव हो साँस भीतर रोके रहने को अन्तर्कुम्भक कहते हैं । जिस तरह साँस भीतर फेफड़ों में भरी गई थी उसी गति से श्वाँस बाहर निकालने को रेचक तथा जितनी देर श्वाँस भीतर रोकी गई थी उतनी देर साँस रहित रहने का नाम बाह्यकुभक कहलाता है । इन क्रियायों से क्रमशः इड़ा और पिंगला नाड़ियों का मंथन होता है । जिससे शरीर में प्राण-ऊर्जा का उत्पादन होता है । इस उत्पादित ऊर्जा को पचाना, उसका निग्रह-नियंत्रण करना, उसके द्वारा अनेक लौकिक अतीन्द्रिय कार्यों के सम्पादन पर भारतीय योगियों ने व्यापक खोज की है । प्राणायाम द्वारा प्राणों को इतना नियन्त्रित किया जा सकता है कि जिससे शरीर को फूल से भी अधिक कोमल तथा बज्र से भी अधिक कठोर बनाया जा सके । राम द्वारा एक ही वाण से सात तालों का काटना, हनुमान का समुद्र की छलांग लगाना और पर्वत से संजीवनी लाना, अंगद का भरी सभा में पाँव उठा देने की चुनौती देना, भीष्म का शरशैया पर लेटे रहना प्राणायाम की शक्ति के ही चमत्कार थे । आज उस विद्या को लोग भूल गये हैं पर अतीत काल में इसी विद्या के कारण इस देश के लोगों ने एक से एक अद्भुत कर्त्तव्य दिखाये थे । शंकराचार्य का परकाया प्रवेश एक प्राणायाम द्वारा नियन्त्रित क्रिया ही थी ।

इस तरह के प्राणायाम आज भी संभव हैं किन्तु अत्यधिक ऊष्मा पैदा करने वाले प्राणायाम यदि किसी को उसकी शारीरिक व मानसिक

परिस्थितियों को जाने बिना बता दिये जायें तो लाभ के स्थान पर उल्टे हानि हो सकती है । इसी कारण दैनिक विधान में यही प्राणायाम रखा गया है । जटिल प्राणायाम अधिकारी पात्रों को ही बताने और अभ्यास कराने की परम्परा है । प्राणायाम के लाभ स्पष्ट और असंदिग्ध हैं । उनका लाभ यों सामान्य स्थिति में हर कोई प्राप्त कर सकता है ।

मन पर नियन्त्रण करने के लिए शास्त्रकारों ने प्राणायाम साधना पर बहुत बल दिया है । दोनों की परस्पर घनिष्टता बताते हुए कहा गया है कि यदि प्राण पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सके तो मनोनिग्रह जैसा कठिन कार्य सरल बन जायगा ।

पवनो बध्यते येन मनस्तेनैब बध्यते ।
मनश्च बध्यते येन पवनस्तेन बध्यते ॥
हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणः ।
तयोर्विनष्ट एकस्मिंस्तौ द्वावपि विनश्यतः ॥

–हठयोग प्रदीपिका ४।२१

जिसने प्राणवायु को जीता उसने प्राण जीत लिया । चित्त की चंचलता के दो ही कारण हैं–एक वासना का दूसरा प्राण वायु का चंचल होना । इनमें से एक के नष्ट हो जाने पर दोंनों का नाश हो जाता है ।

चले वाते चलो बिन्दुर्निश्चले निश्चलो भवेत् ।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत् ॥

–गोरक्ष प. १।९०

प्राण वायु चलायमान रहने से बिन्दु चलायमान रहता है । प्राण निश्चल हो जाने से वीर्य भी निश्चल हो जाता है । समग्र स्थिरता प्राप्त करने के लिए योगी प्राणायाम करे ।

मनो यत्र विलीयते पवनस्तत्र लीयते ।
पवनो लीयते यत्र मनस्तत्र विलीयते ॥ –ह. प्र. ४।२३

अर्थ–जिस जगह मन विलीन हो जाता है उस जगह प्राण वायु लीन हो जाती है और जहाँ वायु विलीन हो जाती है वहाँ मन लीन हो जाता है ।

यावद्वायुः स्थिरो देहे तावज्जीवनमुच्यते ।
मरणं तस्यनिष्क्रांतिस्ततो वायुं निरोधयेत् ॥

–ह. प्र. २।३

अर्थ- जब तक शरीर में प्राण वायु विद्यमान है, तब तक ही वह जीवित है और शरीर से प्राण वायु का निकलना ही मृत्यु हैं, इसलिए प्राण वायु का निरोध करना चाहिए ।

सन्यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं-दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयते, एवमेव खलु सोम्यैतन्मनो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतन-मलब्ध्वाप्राणमेवोपश्रयते, प्राणबन्धन हि सौम्ये मन इति ।

छान्दो. ६।८।२

जिस प्रकार डोरी से बँधा हुआ पक्षी घूम-घामकर अपने मूल आश्रय पर ही आ जाता है, उसी तरह हे सौम्य ! मन कहीं दूसरी जगह आश्रय न पाने पर घूम-घामकर प्राण का ही आश्रय लेता है । क्योंकि मन प्राण से ही बँधा हुआ है ।

नानाविधैर्विचारैस्तु न साध्यं जायते मनः ।
तस्मात्तस्य जयः प्रोक्तः प्राणस्य जय एव हि ॥

-योग बीज

अनेकों प्रकार के विचारों से मन साध्य नहीं होता है इससे प्राण वायु के जीतने से ही मन जीता जाता है ।

चित्तं न साध्यं विविधैर्विचारै-
र्वितर्कवादैरपि वेदवादिभिः ।
तस्मात्तु तस्यैव हि केवलं जयः-
प्राणो हि विद्येत न कश्चिदन्यः ॥

-योग रहस्य

विविध विचारों, तर्कों और अध्ययन श्रवण आदि से चित्त का समाधान नहीं होता, मनोनिग्रह तो प्राणायाम से ही सम्भव है ।

हठिनामधिकस्त्वेकः प्राणायामपरिश्रमः ।
प्राणायामे मनः स्थैर्य- स तु कस्य न सम्मतः ।।

-बोधसार

हठयोगियों का मुख्य साधन श्रम-साध्य प्राणायाम है । यह अन्यान्य योगियों की साधना से अधिक है । परन्तु वह प्राणायाम सिद्ध हो जाने पर मन स्थिर हो जाता है, यह कौन स्वीकार नहीं करेगा ।

इन्द्रिय विकार-अनियन्त्रित वासना प्रवाह का कारण शारीरिक नहीं मानसिक होता है । इन्द्रियों पर मन का नियन्त्रण है । मन विकार ग्रस्त होगा तो इन्द्रियों की चंचलता भी उभरेगी और वे कुकृत्य कर सकेंगी । यदि मन पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सके तो वासना पर अंकुश स्वयमेव लग जाता है । प्राणायाम से मनोनिग्रह, मनोनिग्रह से वासनाजन्य विकारों की रोक थाम सम्भव होती है । असंयम के लिए उत्तेजित करने वाले विकृत मन को कुमार्ग त्यागने के लिए सहमत करना प्राणायाम की सुनियोजित साधना-पद्धति अपनाने से सम्भव हो सकता है । इस सम्बन्ध में साधना विज्ञान का मन्तव्य इस प्रकार है-

प्राणायामो भवेदेवं पातकेन्धनपावकः ।
भवोदधिमहासेतुः प्रोच्यते योगिभिः सदा ॥

योग चूड़ामणि उप. १०८।१०९

प्राणायाम की अग्नि पाप रूपी ईंधन को जलाकर पार करदेती है और वह सेतु के समान संसार सागर से पार होने का मार्ग खोलता है ।

इन्द्रियाणां मनो नाथो मनोनाथस्तु मारुतः।
मारुतस्य लयो नाथः स लयो नादमाश्रितः ॥

-ह. प्र. ४।२९

अर्थ-इन्द्रियों का प्रवर्तक मन है, और मन का प्रवर्तक वायु है और प्राण का नाथ मन का लय है और वह मन का लय नाद के आश्रित है ।

हेतु द्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणः ।
तयोर्विनष्ट एकस्मिस्तौ द्वावपि विनश्यतः ॥

-ह. प्र. ४।२२

अर्थ-चित्त की प्रवृत्ति के दो कारण हैं-वासना, दूसरी प्राण वायु । उन दोनों में से एक के नष्ट हो जाने पर दोनों ही नष्ट हो जाते हैं ।

अध्यात्म साधना में प्राणायाम को योगाभ्यास का महत्पूर्ण अंग माना गया है । उससे मात्र मनोनिग्रह का लाभ ही नहीं मिलता अन्य सूक्ष्म संस्थानों का भी परिशोधन होता है । शारीरिक आरोग्य का लाभ सर्वविदित है । फेंफड़े सुदृढ़ होने, अधिक मात्रा में प्राण वायु के शरीर में प्रवेश करने से जीवन तत्व भी अधिक मिलते हैं और परिशोधन की गति भी तीव्र होती

है । स्थूल और सूक्ष्म शरीरों पर–स्वास्थ्य सम्वर्धन और मानसिक परिष्कार का, प्राणायाम का प्रत्यक्ष प्रभाव होता है । कारण शरीर के भाव संस्थान पर भी इस साधना की उपयुक्त प्रतिक्रिया होती है । कुसंस्कारों, दोष–दुर्गुणों का निराकरण होता है । आत्मिक पवित्रता बढ़ती है । अन्तः करण मेंश्रेष्ठ संस्कारों का उभार होने लगता है । ऐसी स्थिति बनती चले तो आत्मिक प्रगति में किसी प्रकार का सन्देह न रह जायगा । कहा भी है –

दह्यन्ते दह्यमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

–मनु

जैसे अग्नि में डालने से धातुओं के मल जल जाते हैं वैसे ही प्राणायाम करने से इन्द्रियों के विकार दूर हो जाते हैं ।

यथा पर्वतधातूनां दह्यन्ते तपनान्मलाः ।
तथेन्द्रियकृता दोषाः दह्यन्ते प्राणधारणात् ॥

–अमृतनादोपनिषद्

जिस प्रकार सोने को तपाने से उसके खोट जल जाते हैं उसी प्रकार इन्द्रियों के विकार प्राणायाम से जलकर नष्ट होते हैं ।

प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मनः ।
सर्वे दोषाः प्रणश्यन्ति सत्वस्थश्चैव जायते ॥
तपांसि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च ये ।
सर्वयज्ञफलश्चैव प्राणायामश्च तत्समः ॥

–वायु पुराण

प्राणायाम से युक्त नियत आत्मा वाले विप्र के समस्त दोष नष्ट हो जाया करते हैं और फिर वह केवल सत्वगुण में ही स्थित रहा करता है । जो भी तपस्यायें तपी जातीं हैं, व्रत लिए जाते हैं और नियम ग्रहण किये जाते हैं तथा समस्त यज्ञों के करने का जो भी कुछ फल होता है वह सब प्राणायाम के समान होता है ।

तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायामपरो भवेत् ।
सर्व पापविशुद्धात्मा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥

–वायु पुराण

इसलिए योगी को सर्वदा युक्त हो कर प्राणायाम में परायण होना चाहिए। वह फिर समस्त पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर परब्रह्म को प्राप्त कर लिया करता है।

प्राणायामो भवत्येवं पातकेन्धनपावकः।
भवोदधिमहासेतुः प्रोच्यते योगिभिः सदा॥

–योग सन्ध्या

प्राणायाम करने से जैसे पातक रूपी काष्ठ को भस्म करने वाला अग्नि होता है तैसे ही संसार रूपी समुद्र से तारने वाला बड़ा पुल योगियों ने प्राणायाम को कहा है।

तपो न परं प्राणायामात् ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य।

–पञ्च शिखाचार्य

प्रणायाम से बढ़कर और कोई तप नहीं। उससे मलों की शुद्धि होती है और ज्ञान का प्रकाश प्रदीप्त होता है।

सुषुम्नायां सदैवायं बहेत् प्राणसमीरणः।
एतद्विज्ञानमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

–गोरखनाथ

यह प्राण वायु सुषुम्ना नाड़ी में सर्वदा ही प्रवाहित होता है। परन्तु जो योगी इसे जान जाते हैं वे समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं।

प्राणायामेन चित्तं शुद्धं भवति सुव्रत।
चित्ते शुद्धे शुचिः साक्षात्प्रत्यग्ज्योतिव्यवस्थितः॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात्।
मनोजयत्वमाप्नोति पलितादि च नश्यति॥

–जावाल दर्शनोपनिष्द् ६।१६।१९

प्राणायाम से चित्त की शुद्धि होती है। चित्त शुद्ध होने से अन्त.करण में प्रकाश होता है और उस प्रकाश में आत्म–साक्षात्कार होता है।

प्राणायाम का साधक श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करता है। मनस्वी और मनोजयी बनता है।

मार्कण्डेय पुराण में प्राणायाम के चार स्तर बताये गये हैं और उनके द्वारा उच्चस्तरीय उद्देश्यों की पूर्ति होने का प्रतिपादन किया गया है–

तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायामपरो भवेत् ।
श्रूयतां मुक्तिफलदं तस्यावस्थाचतुष्टयम् ॥
ध्वस्तिः प्राप्ति स्तथा संवित् प्रसादश्च महीयते ।
स्वरूपं श्रुणुचैतेषां कथ्यमानमनुक्रमात् ॥
कर्म्मणामिष्टदुष्टानांजायतेफलसंक्षयः ।
चेतसोऽपकषायत्वंयत्रसाध्वस्तिरुच्यते ॥
ऐहिकामुष्मिकान्कामांल्लोमोहात्मकान्स्वयम् ।
निरुध्यास्तेसदायोगीप्राप्तिः सासार्वकालिकी ॥
अतीतानागतानर्थान्विप्रकृष्टतिरोहितान् ।
विजानातीन्दुसूर्य्यर्क्षग्रहाणांज्ञानसम्पदा ॥
तुल्यप्रभावस्तुयदायोगीप्राप्नोतिसंविदम् ।
तदासम्विदितिख्याताप्राणायामस्यसास्थितिः ॥
यान्तिप्रसादंयेनास्यमनः पंचचवायवः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्चसप्रसादइतिस्मृतः ॥

जैसे सिंह, व्याघ्र और हाथी को सिखा सधाकर नम्र बना लिया जाता है, वैसे ही प्राणायाम से प्राण वश में होते हैं ।

जैसे महावत हाथी को अंकुश के बल पर इच्छानुसार चलाता है, वैसे ही योगीजन प्राण से इच्छानुसार काम लेते हैं ।

जैसे पाला हुआ चीता मृगों को ही मारता है, पालने वाले को नहीं । उसी प्रकार प्राणायाम से सँभाला हुआ प्राण पापों को नष्ट करता है, जीवन को नहीं ।

प्राणायाम की चार स्थिति हैं-(१) ध्वस्ति (२) प्राप्ति (३) संवित् (४) प्रसाद ।

जिससे दूषित कर्मों और मनोविकारों का शमन होता है, उसे ध्वस्ति कहते हैं ।

जिससे लोभ, मोह आदि से भरी कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं उसे प्राप्ति कहते हैं ।

जिससे ग्रह-नक्षत्र और सूक्ष्म लोकों से सम्बन्ध जुड़ जाता है तथा दिव्य ज्ञान की ज्योति दीप्तिमान होती है । अतीत अनागत और तिरोहित जान लिया जाता है उसे संवित् कहते हैं ।

जिस स्थिति में पाँचों प्राण तथा दसों इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं, चित्त में आनन्द, उल्लास अनुभव होता है उसे प्रसाद कहते हैं ।

प्राणायाम की पहुँच अध्यात्म क्षेत्र के अति महत्वपूर्ण पर्तों तक है । उसे शारीरिक, मानसिक व्यायामों का उपचार मात्र नहीं समझना चाहिए । वरन् उसे उच्चस्तरीय योग साधना ही मानकर चलना चाहिए । पुरश्चरण अनुष्ठानों की सफलता के लिए पूर्व भूमिका के रूप में प्राणायाम विज्ञान की विशेष साधनाऐं कराई जाती हैं । कहा गया है-

विना प्राणं यथा देहः सर्व कर्मसु न क्षमः ।
विना प्राणं तथा मंत्रः पुरश्चर्याशतैरपि ॥

प्राण रहित होने पर जैसे शरीर में काम करने की कुछ भी क्षमता नहीं रहती, उसी तरह मन्त्र की प्राण शक्ति को जब तक जागृत नहीं कर लिया जाता तब तक सैकड़ों पुरश्चरण करने पर भी मन्त्र शक्ति से अभीष्ट लाभ की आशा नहीं की जा सकती ।

या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि ।
या च मनसि सन्तता शिवा तां कुरु मोत्क्रमीः ॥
प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम् ।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति ॥

-प्रश्नोपनिषद् २।१२।१३

हे प्राण ! तेरा ही रूप वाणी में निहित है, तू ही श्रोत, नेत्र, मन में विद्यमान है । तू उन्हें कल्याणकारी बना । इस शरीर में ही विद्यमान रह । इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ है सो सब तुझ प्राण के ही आश्रित हैं । तू माता-पिता के समान हमारी रक्षा कर और हमें सम्पदाओं तथा विभूतियों से सम्पन्न कर ।

प्राण शक्ति का उपार्जन-प्राणायाम से

साधारणतया श्वाँस-प्रश्वाँस की विशिष्ट क्रिया को प्राणायाम कहते ।

छाती से पसली के भीतर दोनों ओर दो फेंफड़े (फुफ्फुस) फैले हुए हैं । श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया के यह प्रधान अंग हैं । इनकी बनावट शहद की मक्खियों के छत्ते की तरह है । हवा भरने के लिए इनमें छोटे-छोटे कोठे बने हुए हैं । इन वायु मन्दिरों की संख्या १६ से १८ करोड़ के लगभग होती है । यदि इन कोठरियों को खेलकर उनकी दीवारें पृथ्वी पर बिछादी जा

सकें तो इनका क्षेत्रफल १३० से १५० वर्ग गज होगा । छाती की कोठरी में दोनों फेंफड़े अलग-अलग हैं पर जहाँ पसलियों का जुड़ाव है उसी स्थान पर ह्रदय रुधिर और स्वर की बड़ी नाड़ियाँ इन्हें आपस में जोड़ती हैं और रक्तोपवाहक धमनियाँ तथा रक्तोपवाहक शिरायें फेफड़ों को ह्रदय से सम्बन्धित करती हैं । यह फेंफड़े एक साथ ही पतली किन्तु मजबूत झिल्ली के अन्दर रखे हुए हैं जिसे अंग्रेजी में "हैल्यूरल सैक" कहते हैं । जब साँस इन फेंफड़ों में भरती है तो यह फैलते हैं और जब साँस बाहर निकलती है तो सिकुड़ जाते हैं ।

सभी जानते हैं कि ह्रदय दिन-रात रक्त को फेंकता रहता है । जब ह्रदय द्वारा रक्त फेंका जाता है तो वह धमनियों और शिराओं में होता हुआ शरीर के हर भाग में पहँचता है और फिर दूसरे रास्ते से पतली शिराओं में होता हुआ मोटी शिराओं में आकर ह्रदय में वापस पहुँच जाता है । आरम्भ में जब यह रक्त शरीर में घूमने लगता है तो स्वच्छ एवं शुद्ध होता है, किन्तु जब वापिस लौटता है तो शरीर में हर घड़ी उत्पन्न होते रहने वाले विष उसमें मिल जाते हैं । शहर की गन्दी नालियों की भाँति काला-नीला होकर यह रक्त ह्रदय की दाहिनी कोठरी में जमा होता है । यहाँ से उसे एक दूसरी कोठरी में होकर शुद्ध होने के लिए वह बालों से भी बारीक नालियों द्वारा फेंफड़ों की उन हवा वाली लाखों कोठरियों में पहुँचता है जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है ।

साँस द्वारा फेंफड़ों में जो शुद्ध हवा पहुँचती है वह इस विष को अपने साथ बाहर उड़ा लाती है । चौबीस घण्टे में मनुष्य के शरीर से साँस द्वारा इतना विष बाहर निकलता है कि उससे बारह हाथियों की मृत्यु हो सकती है । यदि साफ हवा पर्याप्त मात्रा में न पहुँचे तो शरीर प्राण वायु के जीवन दायक लाभों से वञ्चित तो रहेगा ही साथ ही अशुद्ध रक्त की गन्दगी भी ठीक न हो सकेगी और परिणाम यह होगा कि वह थोड़ी-थोड़ी अशुद्धता धीरे-धीरे जमा होकर स्वास्थ्य बिगाड़ देगी और नाना प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न करेगी ।

इसलिए गहरी और पूरी साँस लेने की पूरी आवश्यकता है जिससे वायु फेंफड़े के हर भाग में जाकर सम्पूर्ण वायु मन्दिरों में रक्त की सफाई

कर सके । अधूरी और उथली साँस लेने से कुछ थोड़े से वायु मन्दिरों की सफाई हो जाती है । क्योंकि उथली साँस का दवाब इतना नहीं होता कि वह हर एक कोठे तक पहुँच सके, जब हवा वहाँ तक पहुँचेगी ही नहीं तो सफाई किस प्रकार होगी ? साँस का सम्पर्क होने पर रक्त की अशुद्धता कारबोनिक एसिड गैस बाहर निकल जाती है और साँस का प्राण ऑक्सीजन-रक्त में घुल जाता है । यह प्राण शक्ति उस शुद्ध हुए रक्त के दूसरे दौरे के साथ शरीर के अंग-प्रत्यंगों में पहुँचकर उन्हें ताजगी और स्फूर्ति प्रदान करती है । शुद्ध रुधिर में एक चौथाई भाग ऑक्सीजन होता है । यदि इसमें न्यूनता हो जाय तो उसका प्रभाव पाचन क्रिया पर अनिवार्य रूप से पड़ता है । ऐसे व्यक्तियों की जठराग्नि मन्द होने लगती है ।

इन सब प्रक्रियाओं पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमें पूरी गहरी साँस लेने की आवश्यकता है । जिससे रक्त की सफाई अच्छी तरह होकर अशुद्धता शेष न रहने पावे और शुद्ध हुए रक्त में पर्याप्त आक्सिजन मिल जाय, जिससे अंग-प्रत्यंगों में ताजगी एवं स्फूर्ति पहुँचती रहे और पाचन शक्ति में निर्बलता न आने पावे । जठराग्नि मन्द होने से अन्य अंगों में शिथिलता आने लगती है और वे अपने काम को अधूरा एवं दोष पूर्ण छोड़ते हैं । यह क्रम यदि कुछ समय जारी रहे तो जीवन यात्रा में नाना प्रकार की विघ्न-बाधायें उपस्थित हो सकती है और विविध भाँति के रोगों का सामना करना पड़ता है ।

अधूरी सांस लेने वालों के फेंफड़ों का बहुत सा भाग निकम्मा पड़ा रहता है । जिन मकानों की साफाई नहीं होती उनमें गन्दगी, मकड़ी मच्छर, छिपकली, कीड़े-मकोड़े आदि का जमघट होने लगता है । इसी प्रकार फेंफड़े के जिन वायु कोष्ठों में सांस की वायु नहीं पहुँचती, उनमें क्षय, खाँसी, जुकाम, उरुक्षत्, कफ, दमा आदि के रोग-कीट जड़ जमा लेते हैं । धीरे-धीरे वहाँ वे निर्बाध रीति से पलते रहते हैं और भीतर अपना इतना आधिपत्य जमा लेते हैं कि फिर उनका निकाल बाहर करना कठिन या असम्भव हो जाता है ।

प्राणायाम विज्ञान का सबसे पहला और प्रारम्भिक पाठ यह है कि हमें पूरी और गहरी सांस लेनी चाहिए यह आदत डालने का प्रयत्न करना

चाहिए कि सदैव इस प्रकार सांस ली जाय कि वायु से पूरे फेंफड़े भर जाँय । यह कार्य झटके से या उतावली में नहीं होना चाहिए । धीरे-धीरे इस प्रकार पूरी सांस खींचनी चाहिए कि छाती भरपूर चौड़ी हो जाय और फिर उसी धीरे क्रम से वायु को बाहर निकाल देना चाहिए । यह रीति फेंफड़ों को स्वस्थ रखने वाली, रक्त को शुद्ध रखने वाली, शरीर के अंग-प्रत्यंगों में चैतन्यता देने वाली, पाचन शक्ति ठीक बनाये रखने वाली है । इसलिए आरोग्य और दीर्घ जीवन देने वाली है ।

छाती का कमजोर व कम चौड़ा होना स्वास्थ्य के लिए एक खतरनाक अभिशाप है जिसकी ओर हर व्यक्ति को जागरूक होने की आवश्यकता है । जापान के प्रसिद्ध डॉक्टर शोजाबुरो ओटेव ने अपनी पुस्तक "दी साइन्स ऐण्ड आर्ट आफ ब्रेकिंग एज ए प्रोफिलैक्टिक एण्ड दी रैप्यूटिक एजेन्ट इन-कञ्जम्पशन" नामक पुस्तक में अनेक प्रमाणों के साथ यह सिद्ध किया है कि तपैदिक का प्रधान कारण फेंफड़ों का कमजोर होना है । उपरोक्त डा. साहब ने वैक्टिरियो लौजिकल इन्स्टीटियूट, बेगुली सैनेटोरियम, नेशनल सैनेटोरियम, मैरिटी मेडिकल कालेज आदि विख्यात अस्पतालों के प्रमुख पदों पर रहकर जो प्रामाणिक अनुभव एकत्रित किये हैं उनसे यह भली प्रकार प्रकट होता है कि अधूरी सांस लेने से जिन व्यक्तियों ने अपनी छाती को निर्बल बना लिया है वे संक्रामक रोगों के शिकार होकर अक्सर अकाल मृत्यु के ग्रास बनते हैं और जिन्हें गहरी एवं पूरी साँस लेने की आदत है वे अन्य कठिनाइयों के होते भी इतनी सहन शक्ति रखते हैं कि कठिन रोगों से बहुत समय तक युद्ध करते रहें एवं उन पर विजय प्राप्त कर सकें ।

शरीर विज्ञान पर नूतन प्रकाश डालने वाले यूरोप के ख्याति प्राप्त डॉक्टर वर्नर मेकफेडन ने अपनी पुस्तक में गहरी साँस लेने की आवश्यकता पर जोर दिया है और स्वस्थता से पूरी सांस लेने का बहुत घना सम्बन्ध बताया है । जबकि अन्य डॉक्टर प्राणायाम के अद्भुत शारीरिक लाभों से अपरिचित थे, तब आज से करीब २०० वर्ष पूर्व एक जर्मन पण्डित इमैनुएल केंट ने अपनी पुस्तक में घोषित किया था कि साँस लेने की प्रक्रिया में सुधार कर लेने से कठिन रोगों से छुटकारा पाया जा

सकता है । क्षय रोग के विशेषज्ञ डा. मुथू ने अपने अस्पताल में अन्य उपचारों के साथ-साथ रोगियों को प्राणायाम करना अनिवार्य रखा । अमेरिका के योगी रामाचरक ने "साइन्स आफ ब्रेथ" पुस्तक लिखकर अपने देश की जनता को प्राणायाम की उपयोगिता भली प्रकार समझाई है । उनके विचारों से अंग्रेजी भाषी लोगों का ध्यान प्राणायाम की ओर विशेष रूप से खिंचा है और जगह-जगह श्वाँस-प्रश्वाँस क्रियाएँ सिखाने वाली संस्थाओं का जन्म हो रहा है ।

डॉ. शेजाबुज ओटेव ने अपना अनुभव प्रकट करते हुए लिखा है, "जब मैं पाँच वर्ष का था तभी से मुझे बीमारियों ने घेर लिया था, आरम्भ में मेरी बाँई जाँघ में अस्थि शोथ हुआ, अस्पताल में चीर-फाड़ हुई जिसमें बेकाम हड्डी के तीन टुकड़े निकाले गये । इसके बाद बहुत ही दुर्बल, पीला और रक्त हीन हो गया । डॉक्टरो ने मेरी कम चौड़ी और सुकड़ी हुई छाती को देखकर सन्देह प्रकट किया कि कहीं तपैदिक का शिकार न बन जाऊँ । वैसे में इतना दुर्बल और रुग्ण आकृति का हो गया था कि हर कोई मुझे तपैदिक का रोगी समझता था अनेक उपचारों के बाद भी जब किसी प्रकार मेरे स्वास्थ्य में कोई उन्नति न हुई तो निराश होकर मैं अपनी मृत्यु की घड़ियाँ गिनने लगा, इन्हीं दिनों मैंने एक व्याख्यान में सुना कि प्राणायाम द्वारा अधिक ऑक्सिजन प्राप्त करके फेंफड़ों को मजबूत और स्वास्थ्य को उन्नत बनाया जा सकता है । उसी दिन से मैंने प्राणायाम करना प्रारम्भ कर दिया । सोते, जागते सदा मुझे प्राणायाम की ही धुन लगी रहती । इससे मेरे शरीर की खूब उन्नति हुई, एक वर्ष के भीतर ही छाती का घेरा चार इन्च अधिक चढ़ गया और ऊँचाई भी करीब-करीब चार इंच ही बढ़ी, इससे अन्दाज लगाया जा सकता है कि मेरा स्वास्थ्य किस तेजी से आगे बढ़ा । डॉक्टरों से जाँच कराई तो उन्होंने बताया कि अब फेंफड़े इतने मजबूत हो गये हैं कि तपैदिक होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । २ अगस्त १९०५ से लेकर १८ जुलाई सन् १९०७ तक के दो वर्षों के भीतर मेरा बजन करीब २२ पौण्ड बढ़ गया । तब से मैं नित्य प्राणायाम करता हूँ और सदा स्वस्थ रहता हूँ ।

मैं प्राणायाम का कट्टर भक्त हूँ । मेरा विश्वास है कि उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए प्राणायाम एक संजीवन विद्या है ।''

पूरी साँस लेने का अभ्यास डालने से छाती की चौड़ाई बढ़ती है, फेंफड़ों की मजबूती और बजन में वृद्धि होती है । हृदय की कमजोरी में सुधार होकर रक्त संचार की क्रिया में एक चैतन्यता दिखाई देने लगती है । पाठकों को श्वाँस विज्ञान के इस तथ्य को गम्भीरता पूर्वक विचारना चाहिए और अविलम्ब पूरी एवं गहरी साँस लेने की आदत डालने का प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिए । कुछ दिन सांस क्रिया पर ध्यान रखने से भूल सुधारते रहने से यह आदत भले प्रकार पड़ जाती है ।

प्राणायाम विज्ञान की दूसरी शिक्षा ''नाक से श्वाँस लेना'' है । यद्यपि मुँह से भी साँस ली जा सकती है पर वह उतनी उपयोगी कदापि नहीं हो सकती जितनी कि नाक से लेने पर होती है । एक बार एक जंगी जहाज के यात्रियों में चेचक बड़े उग्र रूप से फैली । डॉक्टारों ने इनकी विशेष सावधानी से जाँच करते रहने का प्रयत्न किया । मृतकों के बारे में उनकी रिपोर्ट थी कि यह लोग मुँह से साँस लेते थे । उस जहाज में एक भी मनुष्य ऐसा न मरा जिसे नाक से साँस लेने की आदत थी । जुकाम और सर्दी के रोगों के बारे में भी डॉक्टरों की जाँच का यही निष्कर्ष है कि मुँह खोलकर साँस लेने से इनका प्रकोप विशेष रूप से होता है । और भी अनेक छोटे-बड़े रोग इसी बुरी आदत के कारण होते देखे गये हैं । नाक से फेंफड़ों तक जो हवा पहुँचाने वाली नली गई है उसकी रचना इस प्रकार हुई है कि वायु को उचित रूप से संशोधन, परिमार्जन करके भीतर पहुँचावे । नासिका के छिद्रों में छोटे-छोटे बाल होते हैं । यह एक प्रकार की छननी है जिसमें धूल व गन्दगी के अणु अटके रह जाते हैं और छनी हुई वायु भीतर जाती है । जब आप नासिका के छिद्रों में अंगुली डालकर उनकी सफाई करते हैं तो उनमें से कुछ मैल निकलता है, यह मैल वह कचरा है जो वायु के छानने से जमा हुआ है, नासिका में एक प्रकार का तरल पदार्थ स्रावित होता रहता है, बालों में अटकने के सिवाय जो कचरा बचा रहता है व इस स्राव में चिपक जाता है । वायु का इतना संशोधन नासिका छिद्रों में होने के उपरान्त वह आगे चलती है । श्वाँस नली जो

फेंफड़ों तक मस्तिष्क में होती हुई गई है, इतनी लम्बाई में यात्रा करते हुए वायु का तापमान सह्य हो जाता है । यदि वह गरम हुई तो श्वाँस नली के ताप के अनुसार ठण्डी हो जाती है और यदि ठण्डी हुई हो तो गरम हो जाती है । इस प्रकार फेंफड़ों तक पहुँचते-पहुँचते वह सब प्रकार सह्य और संशोधित हो जाती है । किन्तु यदि मुँह से साँस ली जाय तो परिणाम बिल्कुल दूसरी ही प्रकार का हो जाता है । मुँह में नासिका की तरह बाल नहीं हैं जो वायु को छानें। दूसरे मुँह का छिद्र इतना बड़ा है कि उसमें वायु का गर्द गुवार बिना रुकावट के चला जा सकता है । तीसरे मुँह से फेंफड़ों की दूरी बहुत कम है, इसलिए बायु की सर्दी-गर्मी में भी विशेष परिवर्तन नहीं होने पाता । इस प्रकार बिना छनी गर्द-गुवार युक्त, सर्द-गर्म हवा मुँह के द्वारा जब फेंफड़ों में पहुँचती है तो उन्हें हानि पहुँचाती है और बीमारियों की उत्पत्ति करती है । देखा गया है कि जो लोग रात में मुँह से साँस लेते हैं सवेरे उनका मुँह सूखा हुआ, दाह युक्त, कडुवा और बदबूदार होता है । रोगियों को यह लत हो तो उनके स्वस्थ्य होने में अनावश्यक देरी लग जाती है ।

योगियों को प्राणायाम के अभ्यासियों को कड़ी चेतावनी दी जाती है कि वे सदा नाँक से साँस लिया करें । यदि नासिका मार्ग में कुछ रुकावट हो, जिसके कारण मुँह से साँस लेने के लिए बाध्य होना पड़ता हो तो नासिका रन्ध्रों की सफाई कर लेनी चाहिए । यदा कदा इस सफाई को अभ्यास की तरह कर लिया जाया करे तो इस प्रकार की रुकावट उत्पन्न नहीं होने पाती ।

पंचकोशी गायत्री उपासना में प्राण-योग की बहुत आवश्यकता पड़ती है । आरम्भिक अवस्था में एकाग्रता, धैर्य और उत्साह प्राप्त करने के लिए प्राणायाम का सहारा लेना पड़ता है । ध्यान की, प्रकाश की प्रखरता का परिलक्षित होना प्राणायाम से ही सम्भव होता है । आज्ञा-चक्र का तृतीय ज्ञान नेत्र भी प्राण का प्रकाश पहुँचने पर चमकता है और तभी उस ज्ञान चक्षु के उन्मीलन से सूक्ष्म जगत का दिव्य दर्शन कर सकना किसी साधक से बन पड़ता है । आगे चलकर षट्-चक्रों के बेधन से लेकर कुण्डलिनी महाशक्ति के जागरण तक पग-पग पर प्राण की प्रबलता अभीप्सित होती है । यदि प्राण दुर्बल रहा तो साधक की हर साधना लुंज-

पुंज ही बनी रहेगी उसे सफलता का यत्किंचित् आभास तो मिलेगा पर कोई विशेष अनुभूति न हो सकेगी । इसलिए बुद्धिमान साधक स्वयं इस बात का प्रयत्न करते हैं कि उनकी जप-तप साधारण साधनाओं के साथ-साथ प्राणायाम का क्रम भी व्यवस्थापूर्वक चलता रहे ।

प्राणायाम अनेक प्रकार के होते हैं । यहाँ तीन निरापद प्राणायामों का विधान दिया जा रहा है जिनमें किसी प्रकार की कोई आपत्ति किसी के लिए नहीं है बृद्ध, बालक, स्त्री, रोगी सभी इन्हें कर सकते हैं । यह प्राणायाम एक-एक वर्ष-६-६ माह में भी कराये जा सकते हैं और सबका सम्मिलित अभ्यास भी किया जा सकता है । एक वर्ष में एक करना हो तो उनकी संख्या प्रति १५ दिन बाद या एक माह बाद १-१ बढ़ायी जा सकती है सम्मिलित अभ्यास में तीनों प्राणायाम प्रतिमाह से दो, दो से तीन, इस तरह बढ़ाये जा सकते हैं प्राणायाम पका या नहीं उसकी जानकारी शान्तिकुंज हरिद्वार से अपनी प्रगति का विवरण लिख कर ज्ञात की जा सकता है ।

प्राणाकर्षण प्राणायाम

(१) प्रातःकाल नित्य कर्म से निवृत्त होकर पूर्वाभिमुख पालथी मारकर बैठिए । दोनों हाथ घुटनों पर रखिये । मेरुदण्ड सीधा रखिये । नेत्र बन्द कर लीजिये । ध्यान कीजिये कि अखिल आकाश में तेज और शक्ति से ओत-प्रोत प्राणतत्व व्याप्त हो रहा है । गरम भाप के, सूर्य के प्रकाश में चमकते हुए बादलों जैसी शक्ल के प्राण का उफान हमारे चारों ओर उमड़ता चला आ रहा है और उस प्राण उफान के बीच हम निश्चिन्त, शान्त-चित्त एवं प्रसन्न मुद्रा में बैठे हुए हैं ।"

(२) नासिका के दोनों छिद्रों से धीरे-धीरे साँस खींचना आरम्भ कीजिए और भावना कीजिए कि प्राणतत्व के उफनते हुए बादलों को हम अपनी साँस द्वारा भीतर खींच रहे हैं । जिस प्रकार पक्षी अपने घोंसले में, साँप अपने विल में प्रवेश करता है, उसी प्रकार यह अपने चारों ओर बिखरा हुआ प्राण-प्रवाह हमारी नासिका द्वारा साँस के साथ शरीर के भीतर प्रवेश करता है और मस्तिष्क, छाती, हृदय, पेट, आँतों से लेकर समस्त अंगों में प्रवेश कर जाता है ।

(३) जब साँस पूरी खिंच जाय तो उसे भीतर रोकिए और भावना

कीजिए कि "जो प्राणतत्व खींचा गया है, उसे हमारे भीतरी अंग-प्रत्यंग सोख रहे हैं । जिस प्रकार मिट्टी पर पानी डाला जाय तो वह उसे सोख जाती है, उसी प्रकार अपने अंग सूखी मिट्टी के समान हैं और जल रूपी इस खींचे हुए प्राण को सोखकर अपने अन्दर सदा के लिए धारण कर रहे हैं । साथ ही प्राण-तत्व में सम्मिश्रित चैतन्य, तेज, बल, उत्साह, साहस, धैर्य, पराक्रम सरीखे अनेक तत्व हमारे अंग-प्रत्यंग में स्थिर हो रहे हैं ।

(४) जितनी देर साँस आसानी से रोकी जा सके उतनी देर रोकने के बाद धीरे-धीरे साँस बाहर निकालिए, साथ ही भावना कीजिए कि प्राण वायु का सारतत्व हमारे अंग-प्रत्यंगों के द्वारा खींच लिए जाने के बाद अब वैसा ही निकम्मा वायु बाहर निकाला जा रहा है जैसा कि मक्खन निकाल लेने के बाद निस्सार दूध हटा दिया जाता है । शरीर और मन में जो विकार थे वे सब इस निकलती हुई साँस के साथ घुल गये हैं और काले धुँए के समान अनेक दूषणों को लेकर वह बाहर निकल रहे हैं ।

(५) पूरी साँस बाहर निकल जाने के बाद कुछ देर बाहर साँस रोकिए, अर्थात् बिना साँस के रहिए और भावना कीजिए कि अन्दर के जो दोष बाहर निकल गये थे उनको वापस न लौटने देने की दृष्टि से दरवाजा बन्द कर दिया गया है और वे बहिष्कृत होकर हमसे बहुत दूर उड़े जा रहे हैं ।

इस प्रकार पाँच अंगों में विभाजित इस प्राणाकर्षण प्राणायाम को नित्य ही जप से पूर्व करना चाहिए । आरम्भ ५ प्राणायाम से किया जाय । अर्थात् उपरोक्त क्रिया पाँच बार दुहराई जाय । इसके बाद हर महीने एक प्राणायाम बढ़ाया जा सकता है । यह प्रक्रिया धीरे-धीरे बढ़ाते हुए एक वर्ष में आधा घण्टा तक पहुँचा देनी चाहिए ।

नाड़ी शोधन प्राणायाम

(१) प्रातःकाल पूर्व को मुख करके कमर सीधी रखकर सुखासन से, पालथी मारकर बैठिये । नेत्रों को अधखुले रखिये ।

(२) दाहिना नासिका का छिद्र बन्द कीजिए । बाँए छिद्र से साँस खींचिए और उसे नाभिचक्र तक खींचते जाइये ।

(३) ध्यान कीजिए कि नाभि के स्थान में पूणिमा के पूर्ण चन्द्रमा के

समान पीतवर्ण शीतल प्रकाश विद्यमान है । खींचा हुआ साँस उसे स्पर्श कर रहा है ।

(४) जितने समय में साँस खींचा गया था, उतने ही समय भीतर रोकिए और ध्यान करते रहिए कि नाभिचक्र में स्थित पूर्ण चन्द्र के प्रकाश को खींचा हुआ श्वाँस स्पर्श करके स्वयं शीतल और प्रकाशवान् बन रहा है ।

(५) जिस नथुने से साँस खींचा था, उसी बाँये छिद्र से ही बाहर निकालिए और ध्यान कीजिए कि नाभिचक्र के चन्द्रमा को छूकर वापिस लौटने वाली प्रकाशवान् एवं शीतल वायु इड़ा नाड़ी की छिद्र नलिका को शीतल एवं प्रकाशवान् बनाती हुई वापस लौट रही है ।

(६) कुछ देर साँस बाहर रोकिए और फिर उपरोक्त क्रिया आरम्भ कीजिए । बाँये नथुने से ही साँस खींचिए और उसी से निकालिए । दाहिने छिद्र को अँगूठे से बन्द रखिए । इसी को तीन बार कीजिए ।

(७) जिस प्रकार बाँये नथुने से पूरक, कुम्भक, रेचक, बाह्य कुम्भक किया था, उसी प्रकार दाहिने नथुने से भी कीजिए । नाभिचक्र में चन्द्रमा के स्थान पर सूर्य का ध्यान कीजिए और साँस छोड़ते समय भावना कीजिए कि नाभि स्थित सूर्य को छूकर वापिस लौटने वाली वायु श्वाँस नली के भीतर उष्णता और प्रकाश उत्पन्न करती हुई लौट रही है ।

(८) बाँये नासिका स्वर को बन्द रखकर दाहिने छिद्र से भी इस क्रिया को तीन बार कीजिए ।

(९) अब नासिका के दोनों छिद्र खोल दीजिए । दोनों से साँस खींचिए और भीतर रोकिए और मुँह खोलकर साँस बाहर निकाल दीजिए । यह विधि एक बार ही करनी चाहिए ।

तीन बार बाँये नासिका छिद्र से साँस खींचते और छोड़ते हुए नाभिचक्र में चन्द्रमा का शीतल ध्यान, तीन बार दाहिने नासिका छिद्र से साँस खींचते, छोड़ते हुए सूर्य का उष्ण प्रकाश वाला ध्यान, एक बार दोनो छिद्रों से साँस खींचते हुए मुख से साँस निकालने की क्रिया यह सात विधान मिलकर एक नाड़ी-शोधन प्राणायाम बनता है ।

(६) लोम-विलोम, सूर्यवेधन प्रणायाम-

उपरोक्त प्राणाकर्षण, नाड़ीशेधन प्राणायाम के बाद लोम-विलोम सूर्य-भेदन प्राणायाम का विधान है । जिसकी पद्धति निम्न प्रकार है-

(१) किसी शान्त एकान्त स्थान में प्रात:काल स्थिर चित्त होकर बैठिए । पूर्व की ओर मुख, पालथी मारकर सरल पद्मासन से बैठना, मेरुदण्ड सीधा, नेत्र अधखुले, घुटनों पर दोनों हाथ । यह प्राण-मुद्रा कहलाती है, इसी पर बैठना चाहिए ।

(२) बाँए हाथ को मोड़कर तिरछा कीजिए । उंसकी हथेली पर दाहिने हाथ की कोहनी रखिए, दाहिना हाथ ऊपर उठाइये । अँगूठा दाहिने नथुने पर और मध्यमा तथा अनामिका उंगलियाँ बाँए नथुने पर रखिये ।

(३) बाँए नासिका के छिद्र को मध्यमा (बीच की) और अनामिका (तीसरे नम्बर की) उंगली से बंद कर लीजिए । साँस फेंफड़े तक ही सीमित न रहे, उसे नाभि तक ले जाना चाहिए और धीरे-धीरे इतनी वायु पेट में ले जानी चाहिए, जिससे वह पूरी तरह फूल जाय ।

(४) ध्यान कीजिए कि सूर्य की किरणों जैसा प्रवाह वायु में सम्मिश्रित होकर दाहिने नासिका छिद्र में अवस्थित पिंगला नाड़ी द्वारा अपने शरीर में प्रवेश कर रहा है और उसकी ऊष्मा अपने भीतरी अंग प्रत्यंगों को तेजस्वी बना रही है ।

(५) साँस को कुछ देर भीतर रोकिए । दोनों नासिका छिद्र बंद कर लीजिए और ध्यान कीजिए कि नाभि चक्र में प्राण वायु द्वारा एकत्रित हुआ तेज नाभि चक्र में एकत्रित हो रहा है । नाभि स्थल में चिरकाल से प्रसुप्त पड़ा हुआ सूर्यचक्र इस आगत प्रकाशवान प्राण वायु से प्रभावित होकर चमकीला हो रहा है और उसकी दमक बढ़ती जा रही है ।

(६) दाहिने नासिका छिद्र को अँगूठे से बन्द कर लीजिए । बाँया खोल दीजिए । साँस को धीरे-धीरे बाँयें नथुने से बाहर निकालिए और ध्यान कीजिए कि चक्र को सुषुप्त और धुँधला बनाये रहने वाले कल्मष इस छोड़ी गई साँस के साथ बाहर निकल रहे हैं । इन कल्मषों के मिल जाने के कारण साँस खींचते समय जो शुभ्र वर्ण तेजस्वी प्रकाश भीतर गया था वह अब मलीन हो गया और पीत वर्ण होकर साँस के साथ बाँये नथुने

की इड़ा नाड़ी द्वारा बाहर निकल रहा है ।

(७) दोनों नथुने फिर बन्द कर लीजिए । फेंफड़ों को बिना साँस के खाली रखिए । ध्यान कीजिए कि बाहरी प्राण बाहर रोक दिया गया है । उसका दबाव भीतरी प्राण पर बिल्कुल भी न रहने से वह हल्का हो गया है । नाभि चक्र में जितना प्राण सूर्य पिण्ड की तरह एकत्रित था वह तेज पुंज की तरह ऊपर की ओर अग्निशिखाओं की तरह ऊपर उठ रहा है । उसकी लपटें पेट के ऊर्ध्व भाग, फुफ्फुस को बेधती हुई कण्ठ तक पहुँच रही हैं भीतरी अवयवों में सुषुम्ना नाड़ी में से प्रस्फुटित हुआ यह प्राण-तेज-अन्तः प्रदेश को प्रकाशवान् बना रहा है ।

(८) अँगूठे से दाहिना छिद्र बंद कीजिए और बाँये नथुने से साँस खींचते हुए ध्यान कीजिए कि इड़ा नाड़ी द्वारा सूर्य प्रकाश जैसा प्राण तत्व साँस से मिलकर शरीर में भीतर प्रवेश कर रहा है और वह तेज सुषुम्ना विनिर्मित नाभि स्थल के सूर्य चक्र में प्रवेश करके वहाँ अपना भण्डार जमा कर रहा है । इस तेज संचय से सूर्यचक्र क्रमशः अधिक तेजस्वी बनता चला जा रहा है ।

(९) दोनों नासिका छिद्रों को बन्द कर लीजिए । साँस को भीतर रोकिए । ध्यान कीजिए कि साँस के साथ एकत्रित किया हुआ तेजस्वी प्राण नाभि स्थित सूर्यचक्र में अपनी तेजस्विता को चिर-स्थाई बना रहा है । तेजस्विता निरन्तर बढ़ रही है और वह अपनी लपटें पुनः ऊपर की ओर अग्नि शिखा की तरह ऊर्ध्वगामी बना रही है । इस तेज से सुषुम्ना नाड़ी निरन्तर परिपुष्ट हो रही है ।

(१०) बाँया नथुना बन्द कीजिए और दाहिने से साँस धीरे-धीरे बाहर निकालिए । ध्यान कीजिए कि सूर्यचक्र का कल्मष धुँऐं की तरह तेजस्वी साँस में मिलकर उसे धुँधला पीला बना रहा है और पीली प्राण वायु पिंगला नाड़ी द्वारा बाहर निकल रही है । भीतरी कषाय कल्मष बाहर निकलने से अन्तःकरण बहुत हल्का हो रहा है ।

(११) दोनों नासिका छिद्रों को पुनः बन्द कीजिए और उपरोक्त नं. ६ की तरह फेंफड़ों को साँस से बिल्कुल खाली रखिये । नाभि चक्र से कण्ठ तक सुषुम्ना का प्रकाश पुञ्ज ऊपर उठता देखिये । भीतरी अवयवों में दिव्य ज्योति जगमगाती अनुभव कीजिए ।

यह एक लोम-विलोम सूर्य-वेधन प्राणायाम हुआ । साँस के साथ खींचा हुआ प्राण नाभि मे स्थित सूर्य चक्र को जाग्रत करता है । उसके आलस्य और अन्धकार को बेधता है और वह सूर्य चक्र अपनी परिधि बेधन करता हुआ सुषुम्ना मार्ग से उदर, छाती और कण्ठ तक अपना तेज फेंकता है । इन कारणों से इसे सूर्य बेधन कहते हैं । लोम कहते हैं सीधे को, विलोम कहते है उल्टे को । एकबार सीधा, एकबार उल्टा । फिर उल्टा, फिर सीधा । बाँये से खींचना, दाँये से निकालना । दाहिने से खींचना और बाँयें से निकालना । यह उल्टा-सीधा चक्र रहने से इसे विलोम कहते हैं । प्रणायाम की प्रकृति के अनुसार इसे लोम-विलोम सूर्य बेधन प्राणायाम कहा जाता है ।

प्राणायाम के अभ्यासी के लिए कुछ सामान्य नियमों का पालन बहुत आवश्यक है :-

(१) प्राणायाम शुद्ध वायु में खुले स्थान में करें । घर में करें तो कमरे की खिड़कियाँ खुली रहें और स्थान यथा सम्भव शान्त हो ।

(२) प्राणायाम के समय शरीर में बहुत अधिक वस्त्र न लादें ।

(३) प्राणायाम के बाद बजनदार वस्तुऐं न उठायें तथा स्वर्ण, चाँदी आदि धातुओं को छोड़कर सुचालक धातु जैसे लोहा आदि का स्पर्श न करें ।

(४) तुरन्त पेट भर भोजन न करें हल्का व सात्विक आहार ही इन दिनों ग्रहण किया जाय पर पानी बिना प्यास के भी दिन में बार-बार पियें ।

(५) ब्रह्मचर्य ब्रत का यथा सम्भव अधिक से अधिक पालन करना चाहिए ।

गायत्री उपासक का संकल्प जब प्राणायाम प्रक्रिया के साथ जुड़ता है तो ब्रह्माण्ड व्यापी महाप्राणतत्व उसकी ओर विशिष्ट रूप से प्रवाहित हो उठता है । साधक की आस्था के अनुरूप प्राणानुदान दयामयी की कृपा से प्राप्त होने लगते हैं । इस तरह प्राणायाम के अभ्यास द्वारा गायत्री उपासना से उपार्जित प्राण शक्ति की मात्रा द्रुतगति से बढ़ती है साधक को लौकिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक क्षमताओं से विभूषित कर देती है ।

o

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा